

धर्म

श्री सम्पद् ज्ञान प्रचारक मठल का तृतीय पुष्प

स्वाध्याय-माला

(प्रथम भाग)

सम्पादक

रत्न कुमार जैन ' रत्नेश '

साहित्यरत्न, धर्मशास्त्री

प्रकाशक

श्री सम्पद् ज्ञान प्रचारक मठल, जोधपुर ।

श्री सम्पद् }
२५७३ } ११

प्रथम बार
१०००

{ मूल्य
{ ॥२॥

प्रकाशक—

भती,

श्री सम्पन्न ज्ञान प्रचारक मंडल,
जीवपुर

१९४७

मुद्रक—

श्री राधा कृष्ण प्रेस,
जीवपुर

निवेदन

श्री सम्यग् ज्ञान प्रचारक मंडल का बीजारोपण आचार्य श्री बलरुद्र शताब्दी महोत्सव पर भोपालगढ़ में हुआ था, लेकिन विधिवत् स्थापना पूज्य श्री हस्तीमनजी म० मा० क जोधपुर चातुर्मास में हुई। चातुर्मास में ही विशिष्ट व्यक्तियों के परामर्श से मंडल का विधान बनाया गया और कार्य प्रारंभ कर दिया गया। जैसा कि सबको ज्ञात ही है।

फिलहाल मंडल का आकर्म जोधपुर में है। मंडल को स्थापित हुए अभी केवल एक वर्ष हुआ है। इस अल्प अवधि में ही मंडल ने जो प्रगति की है, वह पाठकों के समक्ष ही है।

मंडल के विविध उद्देश्यों में स्थान २ पर यथासमय स्वाध्याय सघ कायम करना और प्राचीन जैन साहित्य की रोज कर रचना संपन्न करना भी प्रमुख उद्देश्य हैं। मंडल ने अपने उद्देश्यानुसार जोधपुर में स्वाध्याय सघ और धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था की है। इस तरह की प्रवृत्ति उसकी धरावर चालू है। स्वाध्याय सघ की स्थापना के साथ २ मंडल को स्वाध्याय प्रेरितियों के लिये एक प्रारंभिक ग्रंथ निर्माण करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ। जिसकी पूर्ति करने के लिये यह स्वाध्याय माला का प्रथम पुष्प पाठकों के समक्ष रखा जा रहा है। इसमें सगृहीत श्री वीर जिहस्तव और गौतम-कुत्तक दोनों ही प्रकरण अप्रकाशित हैं। ये मात्र हस्तलिखित टक्का के साथ ही उपलब्ध होते हैं। अब इनके प्रकाशन में मंडल के उपरोक्त दोनों उद्देश्यों की आशिक पूर्ति हो जायेगी है।

उपरोक्त दोनों प्रकरण हमें श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री हस्ती
महलजी ग० सा० की कृपा से प्राप्त हुए हैं। अतः महल पूज्य श्री
का हृदय से आभार मानता है।

महल की प्रवृत्ति साम्प्रदायिकता से दूर है। उसका कार्य
क्षेत्र विस्तृत पैमाने पर है। उसके उद्देश्य चतुर्मुखी हैं। जिन
अहम् उद्देश्यों को लेकर महल ने अपनी प्रवृत्ति चालू की, आशा
है समाज उसको उपयोगी समझ कर अपनावेगा। महल को
समाज का सहयोग बराबर मिलता रहा तो वह आपकी अधि-
काधिक सेवा करने में उत्पर हो सकेगा। सुसोपु कि बहूना।

— मवदीय —

इन्द्रनाथ मोदी

B A L L B

प्रेसीडेंट

श्रीपमराज कर्णवट

B A L L B

सेक्रेट्री

आमुख

—————

विश्व के तमाम धर्मों ने स्वाध्याय को जीवना में प्रमुख स्थान दिया है। जैन ग्रंथों में तो उसका विशद षण्ण स्थान पर मिलना ही है, लेकिन गीता, पुराण, स्मृति और उपनिषदों में भी स्वाध्याय का विवेचन अधिक मात्रा में किया गया है। स्वाध्याय जीवन का प्रमुख अङ्ग है। जीवन को उन्नत बनाने में स्वाध्याय का स्थान बहुत ऊँचा है। आर्ये अब हम यह देखें कि स्वाध्याय क्या है ?

स्वाध्याय क्या है ?—स्वाध्याय शब्द के नामा यतः दो अर्थ किये जाते हैं—? स्वय अध्ययनम्—अर्थात् अपने आप दूसरों की सहायता लिये बिना ही अध्ययन करना। स्वय ही विचार, चिन्तन और मनन द्वारा उपस्थित समस्याओं को समझना और उन्हें सुलभाना।

२ स्वस्वात्मनोऽध्ययनम्—अर्थात् अपने आपका अध्ययन करना। आत्मचित्तन द्वारा हृदय के अशुभ विचारों को दूर करना और शुभ विचारों को बढ़ाना। जैन धर्म में इसे मात्र अध्ययन के नाम से कहा गया है। मात्र अध्ययन का अर्थ अनुयोग द्वार सूत्र में 'अज्ज्ञापसाधयण' किया गया है। अर्थात् मैं कौन हूँ ? मरे क्या गुण ह? मुझे क्या करना चाहिये ? क्या

नहीं ? यह जानना और उसके साथ २ अपने आपको उस व्यापार में प्रवृत्त करना भाष अध्ययन है ।

उपरोक्त दोनों तरह के स्वाध्याय मिलकर ही पूर्ण स्वाध्याय को बनाते हैं । एक के न होने से स्वाध्याय भी लगटा हो जाता है । ही उत्तराध्ययन सूत्र में साधु की रात्रि—चर्या बताते हुए कहा गया है—

पद्म पोरिसि सज्जाय, धीय भाण क्रियायइ ।
तस्याप निदमोफल तु, चउत्थी भुज्जोधि सज्जाय ॥

अर्थात्—पहली पोरसी में स्वाध्याय, दूसरी में ध्यान, तीसरी में निद्रा-त्याग और चौथी पोरसी में फिर स्वाध्याय करना चाहिये ।

यहा दो बार स्वाध्याय शब्द का होना उपरोक्त दोनों ही तरह के स्वाध्याय को सूचित करता है । दोनों ही जीवन में परमावश्यक है । तो अब हम यह कहें कि सद्ग्रन्थों का घाचन कर अपनी आध्यात्मिक शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी समस्याओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार मनन और चिन्तन कर प्रशस्त मार्ग का पता लगाना और उसीका अथलम्बन लेना स्वाध्याय है ।

कथन किन्ही धर्म ग्रन्थ के थोड़ी देर तक पढ़ने उलटने से ही स्वाध्याय नहीं हो जाना । ऐसे स्वाध्याय से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता । ज्ञान प्राप्ति के लिये तो ध्यान पूर्वक स्वाध्याय करना चाहिए । स्वाध्याय का अर्थ है अपनी विचार शक्ति का प्रयत्न कर अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा से आभ्यन्तर और

बाह्य समस्याओं को सुलझाना-इल करना । दूसरों के सहारे से मनुष्य सत्य तक आसानी से नहीं पहुँच सकता । क्योंकि विचार भिन्नता होने से एक शास्त्र दूसरे शास्त्र का खण्डन (प्रतिषाद्) करता है, एक की बात दूसरे से मेल नहीं पाती । ऐसी हालत में यदि मनुष्य में विवेकपूर्ण विचार शक्ति नहीं हुई-सत्यासत्य का निर्णय करने योग्य बुद्धि न हुई और केवल अंध अज्ञा के बल पर ही अपने पथ पर चलता गया तो आगे जाकर यह अंधकार में गिरे बिना नहीं रह सकता । जिससे निकलना फिर दुरूह हो जाता है । अतः यह नहीं मूल जाना चाहिए कि स्वाध्याय में अपनी विचार शक्ति को सतत बनाने की सध से पहली जरूरत है । जैसे २ अपनी विचार शक्ति बढ़ती जायगी, हमारी आत्म भावना मजबूत होती जायगी और हमें स्वाध्याय का भी मधुर आनन्द आता जायगा । किन्तु यह ध्यान रहे कि अपनी विचार-शक्ति कुतर्क रूप न हो । क्योंकि शास्त्रकार के दृष्टिकोण को अनुसरण करने वाली विचारणा ही सत्य को प्राप्त करती है, न कि कुतर्क ।

विचार शक्ति कैसे बढ़ावें—अब प्रश्न यह आता है कि विचार शक्ति कैसे बढ़ाई जाय । विचार शक्ति को बढ़ाने के लिये चिन्तन और मनन की जरूरत होती है । इसको अधिक स्पष्ट करने के लिए यों कहें—मान लीजिये आपने मेरे सूर्य चुम दी । सूर्य चुमाने से मुझे तकलीफ हुई । इससे आपने विचार किया कि सूर्य चुमाने से जब दूसरे का तकलीफ होती है तो अगर मैं मेरे ही चुमाऊँ, तब मुझे भी तकलीफ होगी ही । इससे आगे जब आपने अपना चिन्तन बढ़ाया और यह जाना था कि ऐसा

क्यों होता है ? तो फिर आपको 'मनन' द्वारा यह मालूम होगा कि आत्मा सयकी समान है। सय दुःख से घबराते हैं। सुख चाहते हैं। इतना विचार करने पर फिर आपको प्रश्न होगा कि—आत्मा दुःख से घबराता क्यों ? और सुख को चाहता क्यों ? आप अपनी मना शक्ति बढ़ाते जाइये। आपको मालूम होगा आत्मा वा स्वभाव दुःख से छुटकारा पाना और सुखको प्राप्त करना है। इसलिये स्वाभाविक ही आत्मा की प्रवृत्ति सुख की ओर होती है। 'जान धूम कर कोई आग में गिरना नहीं चाहता। यदा तक जब आप पहुच गए, तब फिर आप यह सोचेंगे कि यह सुख कौसा है? क्या यही भौतिक सुख, जिसे आत्मा पाना चाहता है या और कोई दूसरा ? इस तरह क्रमशः आप अपनी चिन्तन शक्ति बढ़ाते जायेंगे तो विचार शक्ति स्वतः उसके पीछे २ बढ़ती जायगी। चिन्तन के पीछे विचार तो लगा ही हुआ है। स्वाध्यायी का तो चि तन और मनन का अपने हाथों में रखन चाहिये। विचार तो उनका कठपुतली है। यह तो स्वतः उनके पीछे २ चलती ही जायगी। यह तो हुई अपनी बात। लेकिन अब हम यह देखें कि शास्त्र क्या कहत है ?

स्वाध्याय की आवश्यकता—शास्त्रों ने स्वाध्याय को जीवनेशक्ति का प्रधान साधन माना है। जिस प्रकार बिना कुछ खाये पिये शरीर की भूख नहीं मिटाई जा सकती। उसी प्रकार बुद्धि की भूख भी स्वाध्याय के बिना मिटाई नहीं जा सकती। आहार के अभाव में दूध का जो दुर्गति होती है वही दुर्गति स्वाध्याय के अभाव में बुद्धि की होती है। इसलिये हमारे दैनिक जीवन में सत्त्वाहित्य का अध्ययन उतना ही आवश्यक है

जितना कि शरीर को कायम रखने के लिये भोजन । जैनधर्म में स्वाध्याय को भी एक प्रकार की तपस्या कहा गया है । उपवास आदि व्रत जहा बाह्य तप में गिने गये हैं वहा स्वाध्याय को अंतरंग तप माना गया है । गीता ने भी इसे तप रूप में स्वीकार किया है । देखिये—

‘स्वाध्यायाभ्यसनं चैव धागम्य तप, उच्यते ।’

गीता २७-१३

अर्थात्—स्वाध्याय करना धाणी का तप है ।

स्वाध्याय का महत्व बताते हुए जैन शास्त्र कहता है—

सञ्ज्ञापरण नाणावरणिञ्ज कम्म एवेह

अर्थात्—स्वाध्याय से ज्ञान का अघरोघक ज्ञानावरणीय कर्म का नाश होता है । सम्पूर्णज्ञान की प्राप्ति होती है और अन्त में जीवन के चरम लक्ष्य शुद्ध बुद्ध परमात्मा का साक्षात्कार होता है । देखिये व्यास भाष्य में भी लिखा है—

स्वाध्याय योगमासीत योगात्स्वाध्याय मामनेत् ।

स्वाध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

योग-१।२८ व्यासभाष्य

अर्थात्—स्वाध्याय से योग की उपासना करे और योग से स्वाध्याय का अभ्यास करे । स्वाध्याय और योग की सम्पत्ति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

सत्पुरुषों के वियोग में उनकी याणी ही उनसे साक्षात्कार कराने में समर्थ हो सकती है। स्वाध्याय में ही यह ताकत रही हुई है कि यह परोक्ष में रहे हुए महापुरुषों का भी साक्षात्कार करावे। अगर यह ताकत स्वाध्याय में नहीं होती तो आज दुनिया में ऐसे पुरुष नहीं दिखाई देते, जो महावीर, कृष्ण और बुद्ध के जीवन पर मुग्ध हो अपना सर्वस्व समर्पण कर दें। हमने स्वयं तो बुद्ध या महावीर को प्रत्यक्ष देये नहीं हैं। फिर भी उनकी याणी पर और उनके आदर्श जीवन पर चलने वाले आज लाखों पुरुष हैं। यह स्वाध्याय का ही परिणाम है जो हजारों साल पीत जात पर भी उन्हें भूलने नहीं देता।

जीवन में स्वाध्याय का स्थान—गृहस्थ के प्रतिदिन करने योग्य छह बातों में स्वाध्याय का तीसरा स्थान है। कहा भी है—

देवार्चां गुरु शुभ्रूपा स्वाध्याय सयमस्तप ।
दान चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिन ॥

अर्थात्—देव-स्मरण, २ गुरु सेवा, ३ स्वाध्याय, ४ सयम, ५ तप और ६ दान। ये गृहस्थ के प्रतिदिन करने योग्य कर्तव्य हैं। अतः स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। क्योंकि स्वाध्याय ही समाज में जागृति की लहर उत्पन्न करता है, और स्वाध्याय ही धर्म स्थानों का जीवन चिह्न है। स्वाध्याय ही उदासीन समाज में कर्तव्य बुद्धि का नव चैतन्य संचारित करने वाला है, भक्ति के धग को बढ़ाने वाला है और तीर्थंकर जैसे उच्च पद की प्राप्ति कराने वाला है। स्वाध्याय ही गुरुजनों के उपदेश

और धानियों के ज्ञान को स्मृति में रखने का प्रधान साधन है। इसीलिये श्रुति में कहा है—

स्वाध्यायात्मा प्रमद

अर्थात्—स्वाध्याय करने में भूल मत करो। श्रुतिपा तो यहा तक कहती है कि—

तद्द्वरब्राह्मणो। भवति यद्द्वः स्वाध्याय नाधीते ।

तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्य ।

अर्थात्—जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता उसी दिन ब्राह्मण अनाह्वय हो जाता है। अतः स्वाध्याय नित्य प्रति करना चाहिये। नीति में भी कहा है—

अनन्त सशयोच्छेदि, परोक्षार्यस्य दर्शकम् ।

सर्वस्य लोचः । शास्त्र, यस्य नास्त्यन्व पद्य स ।

अर्थात्—अनन्त सदेहों का नाश करने वाला और परोक्ष में रहे हुए पदार्थों को दिखाने वाला शास्त्र ही सबका लोचन नेत्र है। इसके अभाव में वह अंधा है। उपरोक्त शास्त्र ध्वन हमें आदेश करते हैं कि स्वाध्याय नित्य करना चाहिये। इसमें प्रमाद करना अपने जीवन को नीचे गिराना है।

स्वाध्याय और जैनसमाज—उपरोक्त स्वाध्याय की आवश्यकता और महत्व का समझ कर जब हम हमारे समाज की और एक नजर उठा कर देखते हैं तो स्वाध्याय का एक दम

सत्पुरुषों के वियोग में उनकी घाणी ही उनसे साक्षात्कार कराने में समर्थ हो सकती है। स्वाध्याय में ही यह ताकत रही हुई है कि यह परोक्ष में रहे हुए महापुरुषों का भी साक्षात्कार कराये। अगर यह ताकत स्वाध्याय में नहीं होती तो आज दुनिया में ऐसे पुरुष नहीं दिखाई देते, जो महावीर, कृष्ण और बुद्ध के जीवन पर मुग्ध हो अपना सर्वस्व समर्पण कर दें। हमने स्वयं तो बुद्ध या महावीर को प्रत्यक्ष देखे नहीं हैं। फिर भी उनकी घाणी पर और उनके आदर्श जीवन पर चलने वाले आज लाखों पुरुष हैं। यह स्वाध्याय का ही परिणाम है जो हजारों साल बीत जाने पर भी उन्हें भूलने नहीं देता।

जीवन में स्वाध्याय का स्थान,—गृहस्थ के प्रतिदिन करने योग्य छह बातों में स्वाध्याय का तीसरा स्थान है। कहा भी है—

देवाच्चां गुरु शुधूपा स्वाध्याय सयमस्तप ।

दान चेति गृहस्थाना पट् कर्माणि दिने दिने ॥

अर्थात्—देव-स्मरण, २ गुरु सेवा, ३ स्वाध्याय, ४ सयम, ५ तप और ६ दान। ये गृहस्थ के प्रतिदिन करने योग्य कर्तव्य हैं। अतः स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिये। क्योंकि स्वाध्याय ही समाज में जागृति की लहर उत्पन्न करता है, और स्वाध्याय ही धर्म स्थानोंका जीवन चिह्न है। स्वाध्याय ही उदासीन समाज में कर्तव्य बुद्धि का नव चैतन्य संचारित करने वाला है, भक्ति के वेग को बढ़ाने वाला है और तीर्थंकर जैसे उच्च पद की प्राप्ति कराने वाला है। स्वाध्याय ही गुरुजनों के उपदेश

और छानियों के ज्ञान को स्मृति में रखने का प्रधान साधन है।
इसीलिये धृति में बड़ा है—

स्वाध्यायान्मा प्रमद

अर्थान्—स्वाध्याय करने में भूल मत करो। धृतिया तो
यहा तक कहती है कि—

तदहरब्राह्मणो। भयति यद्द स्वाध्याय नाधीते ।

तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्य ।

अर्थात्—जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता उसी दिन ब्राह्मण
अप्राह्मण हो जाता है। अतः स्वाध्याय नित्य प्रति करना चाहिये।
नीति में भी कहा है—

अनन्त मशयोच्छेदि, परोक्षार्यस्य दर्शकम् ।

सर्वस्य ताया शास्त्र, यस्य नास्त्वथ पथ स ।

अर्थात्—अनन्त मशयों का नाश करने वाला और परोक्ष
में रहे हुए पदार्थों को दिखाने वाला शास्त्र ही सचका लोचन
नेत्र है। इससे अभाव में बड़ा अन्धा है। उपरोक्त शास्त्र बचन
हमें आदेश करते हैं कि स्वाध्याय नित्य करना चाहिये। इसमें
प्रमाद करना अपने जीवन्त को नीचे गिराना है।

स्वाध्याय और जैनममात्र—उपरोक्त स्वाध्याय की आवश्यकता और महत्त्व का समझ कर अब हम हमारे समाज की
और एक मज्जर उठा कर देयते हैं तो स्वाध्याय का एक धम

अभाव ही मालूम होता है। सत्शास्त्र के पन्ना, पाठ्य और चिन्तन की रचि आज अतिशय मन्द हो गई है। इसीलिए राम किं व्याख्यान सुनाया बाले भाइयदिनोंमें भी ऐसे बहुत कम मिलेंगे जो सामान्य (धार्मिक) प्रश्नों का भी उत्तर दे सकें। कारण यही है कि ये सुनते जरूर लेते हैं परंतु फिर चिन्तन और मनन नहीं करते। ये सत्त मुनिराजों के व्याख्यानो में जाता अपना कर्तव्य समझते हैं, पर उन पर चिन्ता करना नहीं। यही यजह है कि ये सुनते हुए भी असुने और जानते हुए भी अनजान से बने रहते हैं। यह याद रखना चाहिए कि स्वाध्याय के बल पर ही कोई धार्मिक सम्प्रदाय ठिक मक्ती है। हजारों वर्षों पहले के तीर्थंकरों व महापुरुषों का जो मन्त्रा परिचय और तत्त्वज्ञान हमको उपलब्ध है, यह भी गुरु शिष्य परम्परा से चालू स्वाध्याय का ही फल है। स्थूलभद्र, स्कन्दिताचार्य और देवार्थिगणी आदि आचार्यों ने इसा स्वाध्याय से शास्त्र ज्ञान को सुरक्षित रखा था। अगर ये देना नहीं करते तो हम आज पूरे अधकार में होते। अतः यह परमावश्यक हो जाता है कि नित प्रति कुछ न कुछ स्वाध्याय जरूर किया जाय।

जैसे यह करने से क्लुपित हवा दूर होकर वायु शुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार स्वाध्याय भी एक यज्ञ है जिससे आत्मा में रहे हुए, काम क्रोधादि विकार दूर हो जाते हैं और आत्मा अपने सत् स्वरूप का पहचान लेती है। जैसाकि गीता में कहा है—

स्वाध्याय ज्ञान यज्ञश्च, यतयः सशित प्रताः ।

अध्याय ४ श्लोक २५ ।

पुस्तकों की सहायता से या व्यक्तियों की सहायता से कुछ जानना अध्ययन कहलाता है। लेकिन स्वाध्याय वह है, जिससे किसी समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करके निष्पत्त निर्णय करे और अपने विश्वासका मजबूत बनावे।

ऐसा स्वाध्याय ही बुद्धि का भोजन है। आत्मोन्नति का प्रशस्त मार्ग है और है सच्चिदानन्द का पथदर्शक। अवश्य ही प्रतिदिन मनुष्य को ऐसा सच्चा स्वाध्याय करना चाहिये।

इसी उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक आपके सामने रखी जा रही है। यह स्वाध्याय महल की प्रथम मीपान स्वरूप है। इसमें वर्णित श्री वीर जिनस्तव और गौतमकुलक दोनों ही प्रार्थना प्रकरण हैं और दोनों ही अपनी २ निजी विशेषताएँ रखते हैं। आइये अब हम तनिक उन पर भी अपनी दृष्टि डालें।—

वीर जिनस्तव — इस ग्रन्थ का नाम वीर जिनस्तव है।

जिसका स्वयं ग्रन्थकार ने प्रकरण के अन्त में 'वीर जिण शुभ्रमेश' पद से निर्देश किया है। इसकी मूल भाषा प्राकृत है और गाथाएँ कुल २२ हैं। जिनमें भगवान् महावीर के सत्सि परिचय के साथ उनकी स्तुति की गई है। इसके रचयिता आचार्य अमयदेवसूरि हैं। जो अपने समय में बड़े विद्वान थे। उनका समय ईश्वरव्या शताब्दी का अन्त और पारसियों का प्रारम्भ काल है। ये चाण्डकुल के जिनेश्वर सूरि के शिष्य थे। स० १००० में वर्धमान सूरि की अनुमति से इनको आचार्यपद दिया गया था। उस समय आगमों की टीकाएँ प्रायः नष्ट हो गई थीं, केवल आचाराग और सूयगहाग सूत्र पर ही उस समय

टीकाए उपलब्ध थी। प्रतिभा सम्पन्न होने से आपको इस कार्यकेलिये कहा गया। आपने इसे स्वीकार किया और तपस्याके साथ टीका निर्माण करने लग गये। कहा जाता है कि इसमें आपको देवी सहाय प्राप्त हुआ था। स० ११२६ क आस पास आपने नव अंगों पर टीकाए बनाई। जो सस्त्रत भाषा में आज सर्यत्र प्राप्त होती है। इनके सिवाय पचाशक आदि ग्रन्थों पर भी टीकाए की। सस्त्रत की भाँति प्राकृत में भी आपने कई मौलिक कृतियाँ बनाई। भगवती मूत्र क निग्रथ प्रकरण पर जो आपन ग्रन्थ बनाया, यह प्राकृत भाषा बरह है। उसी तरह का यह दूसरा धीर जिनस्तथ भी है। इसकी भाषा सरल प्राकृत होते हुए भी ठोस है। भाषा मूलानुगामी है। आचार्य अभयदेवसूरि का कपट षण्णि नगर में स० ११२५ में स्वर्गवास हुआ था।

गौतमकुलक — यह गौतम स्वामीके नामसे प्रचलित है। जैसा कि नाम से ही प्रकट होता है। फिर भी कुछ एक इसे 'लुब्धानरा भी कहत हैं। इसकी रचना कथ और किसने की यह ज्ञात नहीं जाता। लेकिन इतना तो सुनिश्चित है कि यह प्रकरण अर्वाचीन नहीं किन्तु प्राचीन है। इसमें प्रश्नोत्तर के रूप में विविध विषयों को हृदयग्राही ढंग से समझाया गया है। जैसा कि पाठकों को पढ़ने से स्पष्ट मालूम होगा। फिर भी आश्चर्य है कि ऐसा उपयोगी प्रकरण इतना समय तक अप्रकाशित ही कैसे रहा ?

उपरोक दोनों प्रकरणों की गाथाए शब्दार्थ, भाषार्थ और विवेचन श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री हस्तीमलजी म सा की

कापी से उद्धृत किये गये हैं। छायाजुषाद की पूर्ति मात्र इन पत्रियों के लेखक द्वारा हुई है। आशा है सहृदय पाठक इसे पसन्द करेंगे।

सत महात्माओं की भाषा सदैव परिमित व शास्त्रानुकूल ही होती है। लेकिन सम्पादन करते समय उनकी भाषा और भाषों में कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। यद्यपि इस पुस्तक को लिखने में काफी सावधानी से काम लिया गया है, परन्तु फिर भी कुछ रद्द जाना असम्भव बात नहीं है। अतः सम्पादक का उत्तरदायित्व समझकर दयालु पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

मोतीचौक
जोधपुर

विनीत—
रत्नकुमार जैन 'रत्नेश'
सम्पादक



स्वाध्याय प्रेमियों से

- (१) स्वाध्याय प्रारम्भ करने से पहले ज्ञानदाता गुरु को भक्ति पूर्वक प्रणाम करना चाहिये । क्योंकि ज्ञान प्राप्ति में ज्ञानियों का सग प्रधा कारण है । अतः ऐसे परम ज्ञानियों का अतःकरण से सम्मान करना चाहिये ।
- (२) शास्त्रकारों के मूल आशय को समझने के लिये उनके प्रति पूरा श्रद्धा और शुद्ध दृष्टि होनी चाहिये ।
- (३) शास्त्रकार की दृष्टि समझकर उसी दृष्टि से उसका अर्थ करना चाहिये, अन्यथा सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती ।
- (४) पाठक को यह आवश्यक ध्यान रखना चाहिये कि उसका स्थान उच्च है । उसका आचरण और त्याग ऐसा होना चाहिये कि जिस से श्रोताओं के मन में सहज ही आदर भाव उत्पन्न हो जाय ।
- (५) अतीन्द्रिय होने से जो विषय बुद्धि गम्य नहीं हो अथवा युक्ति से बाधित दिखता हो, वहा उन शास्त्रकारों की मूल दृष्टि समझने का प्रयत्न करना चाहिये । परन्तु बुद्धिप्राप्त न होने से उपहास कर बैठना अनुचित है ।
- (६) निम्न पा से गुरु वन्दन कर स्वाध्याय प्रारम्भ करिये—

अज्ञानतिमिराघाना, ज्ञानाञ्जन शलाकया,
घञ्जुदमीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नम ।

श्लोका—परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुख धाम ।
जेथे आप्नु भान निज, तेने करू प्रणाम ॥

दैनिक स्तुति पाठ

अहंते पीतरागाय, सिद्धाय परमात्मने ।

ममः धमणसद्वाय, जिनाज्ञा-पालकाय च ॥१॥

अहंन् सिद्धेति सिद्धेति, प्रोतस्त्याय यो जपेत् ।

इन्द्रियाणि सुसयम्य, स याति परमाधिपम् ॥२॥

स्मरणं जिना देवस्य, विघ्न-घञ्जी विनाशनम् ।

स्मरणं देवदशस्य, सर्व-मगल-कारणम् ॥ ३ ॥

चिन्तनं पीतरागस्य सर्व-व्याधि निवारणम् ।

कषायाऽनल तप्यागा, जतूना ताप हारणम् ॥ ४ ॥

जिने भक्तिं जिने भक्ति, जिने भक्ति भवे भवे ।

सदा मेस्तु सदा मन्तु सदा मेस्तु क्षणे क्षणे ॥ ५ ॥

कोटि-त्रय-कृतं पापं, जिनेन्द्र । स्मरणान्दुभुवि ।

नश्यति क्षणमात्रेण, मन्त्रपाऽथ न लेखत ॥ ६ ॥

इदमत्र परमं मन्त्रम्, इदमेव परमं धराम् ।

पीतरागस्य यद् ध्यानं, हृद्देशे सुविचारत ॥ ७ ॥

अन्यदेषु मे भक्तिर्न स्यात् स्वप्नेऽपि कर्हिचित् ।

परं प्राणवियोगोऽपि, तव भक्तो भवे मम ॥ ८ ॥

प्रातः स्मरामि मय-ताप-हर जिनेशम् ।

प्रातः नवामि जन-भोदकर मुनीशम् ।

प्रातः भजामि शुभ-तीर्थकरं जनेशम् ।

प्रातः पठामि जग-शानि करं शिवेशम् ॥ ९ ॥

सर्वं देवान् परित्यज्य, जिनेश भज भो मन ॥
भ्राताऽयमेव त्वां दुष्टै कृपाय विपयोद्भवै ॥१०॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव घृष्टिस्त्वमेव सिद्धि ।
त्वमेव शान्ति शरण त्वमेव ॥११॥

॥ धी ॥

श्रीमद् अमरदेवसूरि विरचित—

卐 श्री वीर जिनस्तव 卐

मूल-जज्ञा, समणे भयव, महावीरे जिनोत्तमे ।

लोगनाहे सयबुद्धे, लोगतिय विबोहिण ॥१॥

छायानुवाद-तर्ज-राघेश्याम-

महावीर जिन उत्तम हैं, वे स्वयं, बुद्ध जग के स्वामी ।

देवों से प्रतिबोधित जय हो, अमर, ईश अतर्यामी ॥१॥

मायानुवाद—त्रिलोकीनाथ, स्वयं बोध पाये हुए तथा
क्षीणा के समय लोकातिक देवों से प्रेरणा पाये हुए श्री अमर
भगवान महावीर जयवन्त हो । आप धीतरागियों में भी धेष्ट
जिनवर हैं ।

मूल—वच्छरं दिघ्नदाणोह सपूरिय जणासए ।

णाणत्तिय समाउत्ते, पुत्ते सिद्धत्थरायणो ॥ २ ॥

छायानुवाद

देकर धार्मिक ज्ञान प्रभु, जग आशा पूरण करते हैं ।

तीन ज्ञान के धारक जिन, सिद्धार्थ तनय कहलाते हैं ।

भाषानुवाद—वप भर दान देकर लोगोंकी आशा पूर्ण करने वाले भगवान महावीर, जन्म से ही तीन दान (भक्ति, धुरि और अवधि) के धारक और सिद्धार्थ राजा के पुत्र हैं ।

मूल—विद्या रज्ज च रङ्ग च, पुर अतेउर तदा ।

निष्कामित्तो अगाराओ, पवण अणगोरिअ ॥३॥

छाषानुवाद

राज्य राष्ट्र अतःपुर तज कर, घर से नाता तोड़ दिया ।

पुर से निकल आपने जल्दी, मुनिपन को स्वीकार किया ॥३॥

भाषानुवाद—प्रभु महाधार ने राज्य देश, नगर और अण पुर को छोड़कर, गृहस्थ जीवन से विमुक्त हो मुनिपन धार किया ।

मूल—परीसहाण नो भीए मेपाण यमाळमे ।

पवहा समिइपगुत्ते, यमयारी अकिचरो ॥४॥

छाषानुवाद

धी धीर डरे नहीं कष्टों से, दुखों को सहने वाले हैं हैं समिति-गुप्त अरु ब्रह्मचारी, कुछ पास न रखन वाले हैं ॥

भाषानुवाद—फिर धीर प्रभु भयकर कष्टों से भी नहीं डरे, अपार कष्टों को सहन में समर्थ हैं । ५ समिति तीन गु से गुप्त (रक्षित) ब्रह्मचारी और कुछ भी सम्रह नहीं रखे अकिंचन है ।

मूल—निम्नमे निरहकारे, अकोदे माणवजिजए ।
अमाए लोभधिमुक्के, पस ते छिन्न बंधणे ॥५॥

छायानुवाद

ममता मद से हैं दूर प्रभु अहं प्रीति मान से यारे हैं ।
तिलोम, अमायी, शांत अटल, कर्मों को काटने वाले हैं ॥५॥

भाषानुवाद—प्रभु कैसे हैं ? ये ममता और अहंकार से रहित हैं । प्रीति और चढ़पन के मद से दूर हैं । माया और लोभ से मुक्त तथा शांत हैं और कर्म व धर्मों को काटने से बचन रहित हैं ।

मूल—पुण्डरं व अलेवे अ, रुओ इव निरजणे ।
जीवे वा अपट्टिग्घारे, गवण व निरासए ॥६॥

छायानुवाद

जो कमल पत्र सम निर्मल हैं, अहं शून्य समान निरजन हैं ।
नहीं रुकते जीव समान, गगन सम, आश्रय हीन सनातन हैं ॥६॥

भाषानुवाद—ये कमल के पत्र की तरह पाप मल से निर्लेप शून्य के समान राग स्नेह के रंग से नहीं रंग जाय वाले, जीव के समान अप्रतिहत यानी नहीं रुकने वाले और आकाश की तरह आश्रय रहित हैं ।

मूल—घाडव्वा अपट्टियखे कुम्मो वा गुत्त इन्दिए ।
विणमुक्कव । विहगुय, अगिसिगुध्व एगणे ॥७॥

सुधर्षं मे, पूजा और अपमान में मोक्ष और सत्कार में भी एक समान रहने वाले हैं।

मूल—नाणेण दसणेण च, चरिणेण तद्वेष य ।
आलपण विहारेण, महयेणज्जयेण य ॥१२॥

छायाणुवाद

चारित्रज्ञान अरु दर्शन से, निरवधस्थान अनिरुद्ध विहार ।
कोमलपन अरु सरल भाव से, हैं सब गुण में जिन सरदार ॥१२॥

भाषानुवाद—प्रभु ज्ञान दर्शन और चारित्र से, निरवध स्थान और अप्रतिबद्ध विहार स, कोमलता व सरलता से सर्व भेष्ट हैं। और भी—

मूल—लाघवेण च कृतीय, गुत्ती मुत्ती अणुत्तरे ।
सवरेण तयेण च, सजमेण मणुत्तरे ॥ १३ ॥

छायाणुवाद

द्रव्यभाव से लाघवपन है, क्षमा गुप्ति मनोप महान ।
सवर तप अरु सयम गुण से, धीर जगत में सर्व प्रधान ॥१३॥

भावानुवाद—लाघव अर्थात् द्रव्य और भाव के हटके पन से क्षमा से गुप्ति और निर्लोभता में सर्व भेष्ट हैं। वे सवर, तप और सयम स भी जगत शिरामणी है।

मूल—अणेण-गुण सयाकरणे अम्म सुस्कारण भावए ।
घाहस्सएण सजाए, अणतपर—एवही ॥ १४ ॥

छायानुवाद—दोहा—

शुण, शत से आकीर्ण हो, धर्म शुक्र का ध्यान ।
करके घाति कर्म क्षय पाये केवल ज्ञान ॥ १४ ॥

भाषानुवाद—इस प्रकार अनेक गुणों से परिपूर्ण प्रभु धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान में तल्लीन रहे थे, जिससे घाति कर्म क्षय कर केवल ज्ञान को प्राप्त किया ।

मूल—वीररागे अ निगंधे, सव्यनू सभ्यदसणी ।
देविंद दानविदेदिं, निव्वित्तिय महामहे ॥१५॥

छायानुवाद

निमग्न और गतरागी हो, तुम पूर्णज्ञान दर्शन धारी ।
सुर असुर पति ने परम ज्ञान को, महिमा की है सुखकारी ॥१५॥

भाषानुवाद—राग द्वेष से रहित होने के कारण आप वीर-राग हैं । समझ नहीं करने से निमग्न हैं । केवल ज्ञान प्राप्ति के समय देव और दानवों के इंद्रों से जिनका महोत्सव किया गया है, ऐसे आप सर्वज्ञ और सबदर्शी हैं ।

मूल—सव्यभासाणुगाए य, भानाए सव्व ससए ।
जुगव सव्य जीवाण, छिंदई मिन्न गोपरे ॥ १६ ॥

छायानुवाद

है जीवमात्र के विविध विषय सशय सब साथ मिटा देते ।
सब जीवों के जो दोष योग्य, भाषा से सब को हपति ॥ १६ ॥

भाषानुवाद—प्रभु सष भाषाओं का अनुगमन करने वाली अधमागधी भाषा से प्राणिमात्र के सष स-देहों को, चाहे वे सशय अलग २ विषय के हों, एक साथ मिटा देते हैं। अर्थात् धोताओं के विविध प्रकार के सशय भी आपकी अर्द्धमागधी, जो सष के समझने योग्य भाषा है, उस से एक साथ नष्ट हो जाते हैं। किसी को कोई-स देह नहीं रहता।

मूल—द्विष सुदे निस्सेस-कारण स व पाणिण ।

मह-वयाणि पचेध, पन्नविता सभावणे ॥ १७ ॥

छायानुवाद

वर घर्षेन पाच महावत का, प्रभु ने जग का कल्याण किया।
उनमें गुण घर्षेन पाच घीस कर, द्वित सुघ का निर्माण किया।

भाषानुवाद—भाषायायुक्त पाच महावतों का घर्षण कर के आप जीवमात्र के द्वितकारी, सुघ और कल्याण करने वाले होते हैं। अर्थात् आप जीवमात्र के द्वितकारी और कल्याणकर्ता इसलिये हैं कि आपकी भावना युक्त महावतों से शुद्ध मुनि-माग का निरूपण किया है।

मूल—ससार साधरे घोरे (उड्ड) जतु सताण तारण ।

जाणुव्य वेसिय तित्थ, सपत्ते पच्चमि गर ॥ १८ ॥

छायानुवाद

प्रभु भय सागर में गिरे हुए, जीवों को पार लगाते हैं।
नीका सम सत्पथ धतलाकर, फिर सिद्धियतिको जाते हैं ॥ १८ ॥

मायानुवाद—आप सत्कार समुद्र में डूबते हुए प्राणियों को तारने वाले हैं । आपन नौका की तरह धर्म नीध को दिखाया, और उने दिखाकर फिर आप पंचमगनि-मोक्ष स्थान को प्राप्त कर गये । अर्थात् घमतीर्ध के उपदेश से सत्कार में डूबते हुए प्राणियों को बचाकर आपने मोक्ष प्राप्त कर लिया ।

मूल—से मिव अथले निच्ये, अरुचे अयरामरे ।

कम्मण्यच-रिमुक्के, जप वारे जप जिणे ॥ १६ ॥

छायानुवाद

शिव, अनर अमर अरु अचल नित्य, जो निराकार सत्ताधारी । हो पूर्ण कर्म से मुक्त धीर विन, जय जय तरी यतिजारी ॥१६॥

मायानुवाद—अथ मुक्त दशा का स्वरूप यनाते हैं—मुक्त दशा में वह प्रभु शिव-उपद्रव रहित और अजल है । सदा एक रूप होने से नित्य और रूढ़ रहित है । धृद्धास्थता तथा मरण से छुट जाने के कारण अजरामर और कर्म प्रपञ्च से मुक्त वह जिन-राग द्वेष का विजेता धीर प्रभु जयशील है ।

मूल—मे जिणे वज्रमाणे अ महावीरे मष्टायने ।

असख-दुक्ख-विघ्नाण, अम्हाण देउ निच्यइ ॥ २० ॥

छायानुवाद

वह वर्द्धमान् जिनराज यशस्वी, महावीर है स्वयकारी । अगणित दुर्गों से पीडित हमका, अविचल सुप्र दे दितकारी ॥

मायानुवाद—महावीर और यशस्वी वह धी वर्द्धमान प्रभु असख्य दुर्गों से पीडित हम लोगों का निर्वृत्ति-शक्ति प्रदान करे ।

मूल—इमं परमपमोक्षा सशुद्धो वीरनाहो ।
 परमपसमदायो वैद्वि तुल्लत्तर्ण मे ।
 असम सुद दुहेसु सग्न सिद्धि भयेसु ।
 कण्व कण्वरेसु सत्तुमित्तोसु षावि ॥ २१ ॥

छापानुवाद

की मोक्ष पूर्ण स्तुति यों मैं, प्रभु समता भाव प्रदान करो ।
 मैं रहूँ एकसा सुख दुःख में, उपशम भावों का दान करो ।
 ससार मोक्ष या स्वर्ग मिले, मेरे मन में समभाव रहे ।
 हो हेम धूल या शत्रु मित्र सद्भाव सभी पर बना रहे ॥

भाषानुवाद—इस प्रकार उत्कृष्ट प्रमोक्ष भाव से स्तुति किये हुए श्री वीर स्वामी उत्तम उपशम भाव के दान से मुझे समता प्रदान करे । जिससे विषय जाय सुख और दुःखों में स्वर्ग, मोक्ष और ससार में, सुवर्ण और मिट्टी में, शत्रु और मित्र में भी मेरी समभावना बनी रहे ।

मूल—पयडि अ वसद्धि (इ) पद्दाण, सीसेदिजिणे सराण सुगुरुण
 वीर जिण शुभ मेथं पद्ध, कथ अभयदेव सूरिदि ॥२२॥

छापानुवाद

ये वसतिवास के आधिभायक गणी जिनेश्वर गुरु जिनके ।
 उन अभयदेव ने वीर स्तुति की, पढ़ो टले पातक मन के ॥२२॥

भाषानुवाद—वसतिवास के मार्ग का प्रकट करनेवाले आचार्य श्री जिनेश्वर सूरि के सुशिष्य श्री अभयदेव सूरि के द्वारा बनाये हुए इस वीर जिनस्तव को सदा पढ़ते रहना चाहिये । इसको पढ़ने से सब दुःख दूर होजाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति होती है ।

॥ इति श्री वीर जिनस्तवम् ॥

गौतम-कुलक

[भीमरू गजेंद्राचार्यकृतं रत्नचन्द्रिका व्याख्या सहितं]

सुद्धा बुद्धा य मूढा, चंडरंधामीसंगा द्विधा ।
चंडरंह वि नराणं, लक्षण किं वियाहियं ॥

छायानुवाच

लोमी पण्डित मूर्खं पुरुष, दिव्ये मिथ यतलाय ।
इनके लक्षण किस तरह, यह दीजे फरमाय ॥

शष्यार्थ—भगवन् ! मनुष्यों के जो आपने चार विभाग किये हैं । जैसे—(सुद्धा)-बु-ध-लोमी, (बुद्धा) विद्वान् , (मूढा) मूर्ख, (चंडरंधामीसंगा) और चौथा मिथ इन (चंडरंह) चारों (नराण) मनुष्यों के (लक्षण) लक्षण (किं) क्या (वियाहिय) फरमाये हैं ? यह बताने की कृपा करें ।

भाषार्थ—भगवन् ! मनुष्यों के जो आपने चार विभाग किये हैं । जैसे—लोमी, विद्वान् , मूर्ख, और मिथ (जो लोमी, विद्वान् और मूर्ख भी हो) ऐसे चारों मनुष्यों के लक्षण क्या हैं ? यह फरमाइये ।

भगवानुवाच-भगवान फरमाते हैं—

सुद्धानरा अत्यपरा हवति,
मूढा नरा कामपरा हवति ।
बुद्धा नरा सतिपरा हवति ॥
मिदसा नरा तिभिधि आयरन्ति ॥ १ ॥

छायानुवाद

घन सम्रद में तत्पर जो लोभी है।
 ये मूल्य कामवश रहने जो भोगी है।
 क्षमा आदिगुण युक्त यहा परिदत है।
 उपरोक्त मिथनर सभी गुणों से माण्डत है ॥ १ ॥

शुदाय—(बुद्धातरा) लोभी मनुष्य (अत्यपरा) घा जोड़ने में तत्पर (हवति) होत है। (भूढातरा) मूल्य मनुष्य (कामपरा) काम भोग में आसक्त होत है। (बुद्धातरा) बुद्धिमान मनुष्य (अतिपरा) क्षमा आदि गुणों में तत्पर हात है। (मिस्सातरा) मिथार (तिथिवि) तीनों लक्षणों का (अचरति) आचरण करने है।

मावार्थ—लोभी मनुष्य घा जोड़ने में तत्पर हाते हैं। मूल्य मनुष्य काम भोग में आसक्त होने हैं। बुद्धिमान मनुष्य क्षमा आदि गुणों में तत्पर होते हैं। और मिथनर उपरोक्त तीनों लक्षणों का आचरण करने है।

त्रिवेन —इस गाथा में चार प्रकार के मनुष्य बताये गए हैं। जो लोभी आदि नाम से कहे गए हैं। उनमें प्रथम प्रकार के लोभा मनुष्य घा जोड़ने में सदा तत्पर रहते हैं। लोभ के वश उनको यह भी ध्यात नहीं रहता कि मरा हित और अहित क्या है ? सागरदत्त सेठ की तरह उनको सघनाश प्राप्त करना पड़ता है। मूल्य मनुष्य सदा कामX भोगमें तत्पर रहते हैं। कामी मनुष्य हा पाच हा द्रव्योंके काम भोगों में तल्लीन रहते हैं। —को

X उत्तम शब्दादि के प्राप्त का इच्छा का काम कहते हैं और गध रस आदि के उपभोग का भोग करते हैं।

महान् से महान् ज्ञानी का समागम होने पर भी विषयासक्ति के कारण बोध प्राप्त नहीं होता । इस मूर्खता से ही ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने सान नीचर्ष के अट्ट आयुष्य में भी कामभोग की तीव्र आसक्ति से इतने कर्म सचय कर लिये कि उसको सातवीं नरक में जाना पड़ा । उसको अपने भोग की एक एक घड़ी पर २१ करोड़ ४६ लाख ७२ हजार ३४३ पत्त तफ नरक के महान् दुःख प्राप्त हुए । ७०० वर्ष की कुल घड़ियों १ करोड़ ५३ लाख ७२ हजार होती हैं । किन्तु नरक के दुःख ता इन्से भी आगे करोड़ों पत्त पर बढ़ जाने हैं । इन प्रकार विषय भोग के कारण मूर्ख दुर्गति का अधिकारी बनता है । शास्त्र में कहा है कि—

जहा किपाक फलाण, परिणामो न सुदरो ।

एव भुत्ताण भोगाण परिणामो न सुदरो ॥

अर्थात्—जैसे किपाक फल के खाए से परिणाम द्वितकारी नहीं होता उसी तरह भोगों के भोगने का परिणाम भी सुखकारी नहीं होता है । क्योंकि काम भोग इच्छा मात्र से भी दुर्गति में गिराए जाते होते हैं । कहा भी है—

सज्ज कामा विस कामा, कामा आसीविसाँवमा ।

काम पर्येमाणा, अकामा जति दाग्गइ ॥

अर्थात्—काम भोग नीचे शल्य और विष के समान हैं । तथा ये डाढ़ में विष रखा घाले साप से भी भयकर हैं । भोगने की तो बात ही क्या ? कामों की प्रार्थना करते हुए भी जीव उनको बिना पाये ही दुर्गति की प्राप्त करते हैं । इसलिए इनको “क्षणमित्त सुकमा बहुकाल दुक्वा” क्षण मात्र सुखकारा और बहुत काल के लिए दुःखदाया कहे हैं । काम भोग में सुख तो

सरसों के समान है लेकिन कुछ पर्यन्त के समान है। फिर भी मूर्ख मनुष्य काम भोग में तत्पर रहते हैं। परन्तु जो विश्रक्षण हैं वे काम भोग में आनन्द नहीं टाकर अशुभ स्यामी तथा घब्रा शक्तिमत्त की तरह विषयों को विष की तरह छोड़ देते हैं। इसके विपरीत विषयों में मूर्च्छित होकर पुच्छरीक आदि दुर्गति को प्राप्त हुए हैं। ऐसा समझ कर काम भोग से निवृत्त होने वाले बुद्ध-जानकार कहते हैं। इसलिए कहा है कि बुद्धिमान मनुष्य क्षमा-मदनशीलता में तत्पर होते हैं। उनको अनार्य लोगों की तरफ से अनर्थ कष्ट प्राप्त होते हैं। किन्तु वे धाको शक्ति पूर्वक सहन कर लेते हैं। क्योंकि वे वास्तव में तत्त्व के जानकार हैं। शास्त्र ने जीव, अजीव पुरण वाप आधय, संघर, निर्जंग और मोन ये नय तत्त्व बताया है। इनका चिन्तन करना ही ज्ञानियों न बुद्धि का सार कहा है। जैसा कि कहा है—'बुद्धे फल तत्त्व विचारणं च'। उपरोक्त उक्ति के अनुसार तरब की विचारणा में धानी इतन मस्न हो जाते हैं कि उनको अपने शरीर के सुख दुःख का भी भाग नहीं रहता। नल मदात्मा गज सुखमाल ने मस्तक पर जलने हुए अगारे रत्न वन पर भी सोमल ग्राहण पर रोष नहीं किया। किन्तु अपनी अथाधित आत्म शक्ति प्राप्त की। (४) चौथे प्रकार के मिश्र मनुष्य धन, काम और क्षमा तीनों का छोड़ा २ आचरण करते हैं। सामान्य शृद्धस्थ धर्मों साधक की तरह। जा कि धन भी जोड़ते हैं, ससार के विषय विलास भी करते हैं और शक्ति पूर्वक त्याग तप व क्षमा की आराधना भी करते हैं।

सबसे परिष्ठत, साधु, शक्ति शाली और वधु कैसे होते हैं ?
उनके लक्षण इस प्रकार बताये हैं—

ते पडिया जे विरया विरोहे,
 ते साहुणो जे समय चरति ।
 ते सत्तिणो जे ए चयति घम्म,
 ते बघवा जे वसणे इवति ॥२॥

छायानुवाद

रहते विरोध से दूर यही परिदृष्ट हैं ।
 समभाषी ही तो साधु गुणों से मडित है ॥
 पर धीर यही जो धर्म नहीं तजते हैं ।
 'पापघय' वे ही, जो कठिन समय रहते हैं ॥

शब्दार्थ—ते पडिया-वे परिदृष्ट हैं (जे विरया विरोहे) जो विरोध से दूर रहने हैं । ते साहुणो-साधु वे हैं (जे समय) जो समता का (चरति) पालन करते हैं । ते सत्तिणो-शक्तिशाली वे हैं (जे घम्म) जो धर्म को (ए चयति) नहीं छोड़ते हैं । ते बघवा-भाई वे हैं (जे वसणे) जो विपत्ति के समय में सांघी (इवति) होते हैं ।

भावार्थ—विरोध से दूर रहने वाले ही परिदृष्ट हैं । जो समता रखने हैं वे साधु हैं । जो धर्म को नहीं छोड़ते वे ही शक्तिशाली हैं । बधु वे हैं जो विपत्ति काल में भी साथ रहते हैं ।

विवेचन—विरोध से दूर रहने वाले ही परिदृष्ट हैं । अर्थात् जिससे दूसरे का पीडा हो जैसे व्यवहार से शानी अलग रहते हैं । जैसा कि शास्त्र में कहा है—

एव तु गणेशो सरज न दिग्भ्र किंचित्

ज्ञान का स्वर यही है कि किसी को कष्ट न दिया जाय।
 इसके विपरीत—

क्रितीए पद्वियाए पयाणुकोडिए परालभूयाए,
 ज एतावि न जाणति परस्स पीडान कायम्यं ।

अर्थात्—जिन विद्या से मनुष्य इतना भी नहीं समझे कि
 दूसरे को कष्ट नहीं देना चाहिये, जो पराल के समान निस्सा
 उस करोड़ों पदवागी विद्या को पढ़ने से क्या सार है ? कुछ
 भी नहीं। इसलिये ज्ञान पढ़ने का सार यही है कि किसी को
 कष्ट नहीं दिया जाय। क्योंकि—

अहिंसानक्षणा धर्मश्चाधर्मं प्राणिना घघः ।
 तस्मात् पूण प्रयत्नेन, कर्त्तव्या प्राणिना दया ॥

अर्थात्—धर्म का लक्षण अहिंसा है और प्राणियों की
 हिंसा अधर्म है। इसलिये धर्मार्थियों को यथा पूर्वक प्राणियों
 की दया करना चाहिये।

चाह थाड़ा पढा हा या अधिक कि तु जो भगवान की
 आज्ञा के अनुसार घैर विरोध से निवृत्त हो चुका है, यही
 ज्ञाना है। यथा उ—

क्रिया काय किलेमो नाणभासो तानुगलसोसो ।
 पराउपमा दम्भो, उउसम विणा विडम्बणा सव्ये ॥

अर्थात्—क्रिया करना काया को कष्ट देना है और ज्ञान
 का अभ्यास कर । तानु को सुजाग है। पर उपदेश भी दम्भ
 है। क्योंकि उउउ। भाष के विना सव विडम्बना मात्र है।

घैर निवृत्ति का मूल कारण उपशम है। महाराज उदाह राजा ने इसी उपशम भाव से मिथु सौरीर आदि १६ देशों का राज्य छोड़ दिया और मुनि दीक्षा धारण करली। नीति भी यही कहती है कि—

पढ़ पढ़ पोथी जग भूवा, पढ़िया न पण्डित दायं ।
 ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित दाय ॥

सारांश यह है कि घैर मिटा कर जग में प्रेम करने वाला ही पण्डित है। ऐसे पण्डित तो साधु होते हैं। इसलिए साधु का लक्षण कहते हैं। साधु वे हैं जो सब जीवों पर समता रखते हैं और शास्त्रानुसार चलते हैं। ध्यान, दर्शन चारित्र्य रूप रत्न त्रयी या निर्वाण का साधना करने से वे साधु कहते हैं, जो समिति पूर्वक चलते हैं। जैसे अंधक मुनि क ५०० शिष्य जो घोषी में पील दिये गए फिर भी उन्होंन समता नहीं छोड़ी। यही है साधुता का आदर्श। ऐसी धैर्यता शक्ति सम्पन्न म ही होती है। अत उसका लक्षण कहते हैं। जो विपत्ति क समय भी धर्म को नहीं छोड़ते वे ही शक्ति शाली है। जैसे-अरण्यक थायक और चन्द्रावतसत्र राजा हो गए हैं। अरण्यक को एक राजस ने बहुत कष्ट दिये। यहां तक कि उनके जडाज को समुद्र में गिरा दिया, परंतु फिर भी अरण्यक १ अपना धर्म नहीं छोड़ा। इसी का कहते हैं शक्ति शालीपन।

सच्चे या धर्म—बन्धु या मित्र सत्कार में बहुत होते हैं, परंतु सच्चे बन्धु वे कहलाते हैं जो कठिन समय में भी साथ देते हैं। इतिहास सारी देता है कि चेडा महाराज को अंगरह देश के राजाओं १ युद्ध में साथ दिया था, जो कि उनके मित्र

ये । वास्तव में धर्म ही आत्मा का सच्चा मित्र है, जो उसको दुर्गति में गिरने ही नहीं देता । किन्तु मोह युक्त मित्रता में भी वे ही प्रशसनीय हैं जो विपत्ति के समय साथ नहीं छोड़ते हैं और मित्र की मदद करते हैं ।

क्रोध, मान माया और लोभ के वश प्राणी को क्या फल भोगना पड़ता है ?

कोडाभिभूया ण सुखं लहति ।
 माणसिणो सौयपरा इवति ।
 माया सिणो हुँति परस्म पेम्सा,
 लुब्धा मदिच्छा नरय उवति । ३ ।

छाषानुवाद

क्रोधी मनुष्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता ।
 मानी मनुष्य शोकानुर ही नित रहता ।
 मायाधी रहते दास सदा औरों के ।
 अति लोभी जाता नरक धाम रो रो के । ३ ।

शब्दार्थ—कोडाभिभूया—क्रोध से अभिभूत मनुष्य (सुख, सुख को (ण लहति) प्राप्त नहीं करत । माणसिणो—मानी मनुष्य (सौयपरा) शोक से व्याकुल (इवति) रहते हैं । मायासिणो—कपटी मनुष्य (परस्म) दूसरों के (पेम्सा) दास होते हैं । लुब्धा—लोभी (मदिच्छा) महा इच्छावाले मनुष्य (नरय) नरक के (उवति) प्राप्त करते हैं ।

*मायाय—क्रोध से अभिभूत मनुष्य सुख को प्राप्त नहीं करत हैं । मानी मनुष्य शोक से व्याकुल रहते हैं । कपटी मनुष्य दूसरों के दास होते हैं और लोभी मनुष्य नरक को प्राप्त करते हैं ।

विषेधन—क्रोध से याकुल मनुष्य शान्ति-सुख को नहीं पाता । क्योंकि क्रोध शरीर को तपाता, रक्त को सुखाता और आत्मा को अपना मान भुलाता है । क्रोध के समय मनुष्य में दया नहीं रहती । क्रोधी अनिष्ट घवन सुनकर काले नाग की तरह विष उगलने लगता है । अग्नि के समान जलते हुए क्रोधी के पास जाना भी नाशकारी होता है । कदा भी है—

क्रोधी मूलमनघाता, क्रोध ससार घर्द्धन ।
धमक्षयकर क्रोध, स्वमात् क्रोध विषर्जयेत् ।

अर्थात्—क्रोध अनर्थ का मूल और ससार को घटाने वाला है । क्रोध से धर्म का नाश होता है । इसलिए क्रोध का त्याग करना चाहिये । शास्त्र में कहा है कि 'क्रोहो पीडणसे' क्रोध प्रीति का नाश करता है । उत्तम पुरुष इसी लिए क्रोध को मन में स्थान नहीं देते हैं । जैसे वि कहा है—

उत्तमस्य क्षण क्रोध, मध्यमस्य घटी द्वय ।
अधमस्य बहुदोरात्र पापाना मरणात्तक ॥

अर्थात्—उत्तम पुरुष का क्रोध क्षण भर रहता है । मध्यम लोगों का २ घण्टी । अधम जन का दिन रात और पापियों का प्रायः मृत्यु पर्यन्त रहता है । ऐसा समझ कर खुदमात को चाहिए कि उदय में आये हुए क्रोध का निष्फल करे । क्योंकि क्रोध से सुख नहीं मिलता है । कदाचित् प्रसिद्ध है कि—

क्रोध कुट्ट कुट्ट कर मर जैसा अग्नि की मल ।
समाधन गुणविषा रहे, पापे मिथी प्राप्त ।

11
 यथा—अचकारी नारीवत् । क्रोधी मनुष्य को मान भी होता है । इनकिये मान का फल बताते हैं । मानी मनुष्य विंता में आकुल रहते हैं । क्योंकि मान विनय का मांश करने वाला है । जैसा कि शास्त्र न कहा है 'माणो विणय नासणो' । जब विनय नहीं तो ज्ञान कहाँ ? और ज्ञान नहीं तो चारित्र कैसे हो सकता है ? चारित्र के अभाव में मोक्ष नहीं जाता । जब मोक्ष नहीं तो आत्यंतिक दुःख कैसे हो सकता है ? मान के यश पूर्व समय में बाहुबली, मराचि, सिंहगुफावासी मुनि, घाण्णक दुर्वाधन और राषण आदि कई पुंरुषों न दुःख और विंता का अनुभव किया है । जो कथानक में प्रसिद्ध है । अचकारी मनुष्य को किस प्रकार विंता करनी पड़ती है इसके लिए राजा चन्द्रप्रद्योतन और दशरथभद्र के उदाहरण परोक्ष हैं । किसी समय महाराज दशरथभद्र भगवान् महाशिव का अपनी विस्तीर्ण श्रद्धि व साथ धन करन के लिये गये । अथ दशनार्थियों की अपेक्षा अपने साथ इतना बड़ा ठाठ-बाट टककर दशरथभद्र के मन में अहंभाव पैदा हो गया । दशरथभद्र के इस मान को हटाने के लिये इन्द्र न उपाय सोचा । उन्होंने ६४ हजार हाथी वैश्व शक्ति से निर्माण किये । हर एक हाथी के अन्तर्ग मुँह और दातों की अलौकिक रचना की । साथ ही इन्द्र न अपने भी १६ अरब ७७ करोड़ ७२ लाख और १६ हजार रूप किये और इन्द्राणी के भी २१ करोड़ ७७ लाख और २० हजार रूप बनाये । उस अनुपम श्रद्धि के साथ इन्द्र आते हुए देवकर दशरथभद्र राजा बहुत चिन्तित हुआ । लज्ज वश उसको अपना मुँह दिखाना भी कठिन हो गया । लेकिन वह तो विचारक था अतः समझल गया और समझी बन गया जिससे इन्द्र भी उसके धरनों में नतमस्तक हुआ । परन्तु उस

स्थान पर यदि कोई दूसरा होता तो समय है वहाँ जीवित ही नहीं मिलता । ऐसा समझ कर युद्धिमान पुत्र्य अहंकार नहीं करते हैं । कदा भी है—

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्द, अर्धो घटो घोषमुपैति नूनन् ।

पुनश्च—कनक पत्र भलके नहीं, कासी बहु भननाय ।

ऊँच पुत्र्य बोले मधुर, नीच बने ज्यू बाय ॥

भरिया ते भलके नहीं, भलके ते भाषा ।

मानुष प ही पारखा, बोल्या ने लाधा ॥

अर्थात्—मनुष्य की परीक्षा बोलने पर हो जाती है । इस प्रकार मान-अहंकार इस लोक में चिन्ता और परलोक में नीच कुल आदि का कारण बनता है । अतएव स्थाय है । मानी मनुष्य मान रक्षा के लिये कपट भी करता है । अत अहंकार का फल दिखाते हैं । मायाया दूसरे के गुलाम बनते हैं । 'माया मिच्छाणि नासे' अथन् कपट से मित्रता का नाश होता है । क्योंकि कपटी का व्यवहार 'विषकुम्भ पशोमुखे' के अनुसार होता है । कदा भी है—

मुख पद्मदलाकार, वाचा चन्दन शीतलम् ।

हृदय कर्तरीयुक्त, त्रिविध धूर्त लक्षणम् ॥

अर्थात्—मुख पर कमल की तरह सुदरता, गणी में मिठास और हृदय में केंची (कपट) रक्षणा धूर्त का लक्षण है । कपट करने से मनुष्य को स्त्रीवेद का बंध करना पड़ता है । यदि कपट की अधिक भ्रमकरना हो तो जीव को पशु गति में ओ मटकना पड़ता है । भगवान् मल्लिनाथ पूर्वमेव विवञ्जित

यथा—अहकारी नारीयत् । मोर्षी मनुष्य का मान भी होता है । इसलिये मान का फल बताते हैं । मानी मनुष्य विता में आकुल रहते हैं । क्योंकि मान विनय का भाग करने वाला है । जैसा कि शास्त्र १ वहा है 'माणो विणय नासणो' । जब विनय नहीं तो शान कहाँ ? और शान नहीं तो चोरित्र कैसे हो सकता है ? चारित्र के अभाव में मोक्ष नहीं जाता । जब मान नहीं तो आत्यतिक दुःख कैसे हो सकता है ? मान के वश पूरे समय में बाहुबली, मरीचि, सिद्धगुफायामी मुनि, चाणक्य दुर्योधन और गणेश आदि कई पुरुषों ने दुःख और विता का अनुभव किया है । जो कथानक में प्रसिद्ध है । अहकारी मनुष्य को किस प्रकार विता करनी पड़ती है इसके लिए राजा चन्द्रमौलिन और दशरथमद्र के उदाहरण पर्याप्त हैं । किसी समय महाराज दशरथमद्र भगवान् महाशिव का अपनी विस्तीर्ण श्रद्धि व साथ ध्वस्त कराने के लिये मय । अन्य दशतार्थियों की अपेक्षा अपने साथ इतना बड़ा ठाट-बाट रखकर दशरथमद्र के मन में अहमाय पैदा हो गया । दशरथमद्र के इस मान को हटाने के लिये इन्द्र ने उपाय सोचा । उन्होंने ६४ हजार हाथी वैश्विक शक्ति से निमण किये । इत्येव हाथा व शनकों मुख और दातों की अलौकिक रचना की । गाय ही इन्द्र ने अपना भी १६ अरब ७७ करोड़ ७२ लाख और १६ हजार रूप किय और इन्द्राणी के भी २१ करोड़ ७७ लाख और २० हजार रूप बनाये । उस अनुपम श्रद्धि के साथ ६ दश आते हुए दशरथमद्र राजा बहुत चिन्तित हुआ । लज्जा वश उसकी अपना मुँह दिखाना भी कठिन हो गया । लेकिन यह तो विचारक था अतः समझ गया और सपनी बन गया जिससे इन्द्र भी उसके चरणों में नतमस्तक हुआ । परन्तु उस

स्थान पर यदि कोई दूसरा होता तो समय है यहाँ जीवित ही नहीं मिलता। ऐसा समझ कर बुद्धिमान पुरुष अहंकार नहीं करते हैं। कदा भी है—

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्द, अहो घटो घोषमुपैति नूनम् ।

पुनश्च—कनक पत्र भल्लके नहीं, कासी बहु भ्रननाय ।

ऊँच पुरुष बोले मधुर, नीच बने ज्यू बाय ॥

मरिया ते भल्लके नहीं, भल्लके ते भाषा ।

मानुष ए ही पारणा, बोल्या ने लाघा ॥

अर्थात्—मनुष्य की परीक्षा बोलने पर हो जाती है। इस प्रकार मान-अहंकार इस लोक में चिन्ता और परलोक में नीच कुल आदि का कारण बनता है। अतएव त्याज्य है। मानी मनुष्य मान रक्षा के लिये कपट भी करता है। अतः अथ कपट का फल दिखाते हैं। मायावा दूसरे के गुलाम पाते हैं। 'माया मित्राणि नासेत्' अर्थात् कपट से मित्रता का नाश होता है। कशोबि कपटी का व्यवहार 'विपकुम्भ पशोमुपे' के अनुसार होता है। कदा भी है—

मुख पद्मदलाकार, वाचा चन्दन शीतलम् ।

हृदय कर्तरीयुक्त, त्रिविध धूर्त लक्षणम् ॥

अर्थात्—मुख पर कमल की तरह सुंदरता, नाखी में मिठास और हृदय में कर्ची (कपट) रखना धूर्त का लक्षण है। कपट करने से मनुष्य को स्त्रीवेद का पद्य करना पड़ता है। यदि कपट की अधिक भयकरता हो तो जीव को पशु गति में भी मटकना पड़ता है। भगवान् मल्लिनाथ पृथमवर्षे कठिन

तपस्या से तीर्थंकर पद की प्राप्ति करके भी कपट के प्रताप से श्मश्री रूप में पदा हुए । जब तपस्या जैसे शुभ मार्ग में किया हुआ सुख कपट भी ऐसा भयकर होता है, तब स्वार्थ साधना में किया हुआ छल कपट कैसा भयकर होगा ! इसका तो संदेह ही अनुमान का स्वकते हैं । प्रायः कपट किसी ७ किसी लोभ से किया जाता है । इसलिये अब लोभ का फल बताते हैं । जो लोभी होता है वह अपना सृष्ट्या के कारण नरक में जाता है । क्योंकि जो बड़ी इच्छा धाले होते हैं उनकी सृष्ट्या अधाह होती है । ससार का घन तो सवयात या असवयात ही है, किन्तु सृष्ट्या अनन्त है । अनन्त को पूर्ण करना असम्भव है । इसलिये कहाँ है—

गगनाऽग्नि-यमो-राजा समुद्र मुद्गर गृहम् ।
सप्तैतानि न पूषन्ते, पूर्यमाधान नित्यश ॥

अथात्—आकाश, अग्नि, यम, मृत्यु, राजा समुद्र पेट और घर ये सात जगह सदा भरत हुए भी पूर्ण नहीं होती । अनन्त परार्थ रखने पर भी आकाश में सदा पोल ही पोल रहती है । गाँव भर की धीनें जलाकर भी आग की भूख यनी रहती है । अर्वाणिन जीवों को मार लेन पर भी काग का मुँह खुला ही रहता है । ऐसा ही राजा, समुद्र, पेट और घर भी नहीं भरत हैं । लोभी क्या २ कष्ट सहते हैं, यह सवया विदिन ही है । ज्ञानियों न कहा है कि 'लोभो सव्य विणालो' अथात् लोभ सर्वको नाश करन वाला है । लोभ आग के समान है जो उत्तम धर्म रूप धन को जला देता है । इनके द्वारा अपयश रूप धूत्र की इच्छा होती है और भय भङ्गा की तरह फेंक जाना है ।

ज्वाला निकलती है। मोड़ वायु ने प्रदीप्त बनी हुई यह आग आत्मा का सर्वनाश कर बैठती है। ससार के प्राणी जो लोभ की शक्ति में जल रहे हैं, वे इस लोक में क्या परलोक में भी दुर्गति भोगते हैं। सभूम चक्रवर्ती इसी लोभ के कारण सातवें नरक का अधिकारी बना था। छद्म खंड का राज्य मिल जाने पर भी उसको सतोष नहीं हुआ। उसने चाहा कि मैं सातवां खंड मिलाकर सच्चा चक्रवर्ती बनूँ। सेवक देवों ने इससे प्रार्थना की कि—स्वामिन् ! आपने छद्म खंड का राज्य प्राप्त कर लिया है। अब अधिक तृष्णा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि चक्रवर्ती छद्म खंड का ही स्वामी होता है। सातवें खंड को पाने में अहित की आशंका रहती है। परन्तु लोभयश चक्रवर्ती ने देशों की यातनामान कर अपना जहाज समुद्र में बड़ा दिया। परिणाम यह हुआ कि उसे वहीं समुद्र में डूब जाना पड़ा और सातवें खंड के बजाय लोभ की भयकरता से सातवें नरक में जाना पड़ा। इसीलिये कहा है कि लोभी मनुष्य नरक गति को प्राप्त करता है।

पुनः क्रोधादि कर्माणां से होने वाली हानियों को प्रकारान्तर से बताते हैं—

क्रोधा विस कि अमय अहिसा,
 मण्यो अरी कि हियमप्यमाद्यो ।
 माया भय कि, सखण तु सद्य,
 लोहा दुर्ह कि सुदमाहु तुदा ॥४॥
 छायानुवाद

विष क्रोध अहिसा ही अमृत पहिलानो ।
 रिपु वर्ष मित्र तुम अप्रमाद को मानो ॥

सुगति धरण नहीं कर पायी । किन्तु अप्रमाद दशा के कारण ही वंशारण भद्र ने इन्द्र को भी लज्जित कर दिया और बाहु धरु मुनि भी इसी अप्रमाद से वेचल छात्र को प्राप्त कर गये । इसलिये कहा है कि अप्रमाद ही मन्त्रा द्वितीय मित्र है । मित्र भय से बचाता है । इसलिये आचार्य भय का स्वरूप बनाते हैं कि पू कपट ही भय का स्थान है । क्योंकि मायावी प्राणी सदा हृदय में चिंतित रहते हैं । उसका इस ध्यान का हर समय विचार रहता है कि नहीं मरी बात प्रकट न हो जाय । और तो क्या ? सोने समय भी कपटी को चन स निद्रा नहीं आती है । भयभीत के लिये शरण की अपेक्षा होती है । इस लिये आचार्य कहते हैं कि दूसरों ही शरण है । क्योंकि सत्य में ही सच प्रतिष्ठित है । धर्म का सार भी सच ही है । सत्य के बिना मनुष्य वैसा ही शोभा-हीन दिव्यता है जैसा कि जीव के बिना शरीर । इसी बात का कवि ७ कहा है—

काया इस बिना नदी जल बिना दाता बिना यानका
 भार्या भक्ति बिना कुल सुत बिना धेनुश्च दुग्ध बिना ।
 आमा स्तोत्र बिना पुर नृप बिना पुण्य बिना मानवा
 एते सर्व न शोभन् विमपर धाणी च सत्यं विना ॥

सत्य के प्रभाव से अग्नि जल के समान समुद्र द्राव्य के समान, शूल फूल के समान, कूप विषर के समान, सिंह शृंग के समान, विष अमृत के समान और मय माला जाते हैं । विषमस्थल भी सम बन जाते हैं । बढ़कर कोई शरण नहीं है । इसी सत्य के प्र अपनी मूल स्वीकार कर आत्म

समय के सत्य के कारण उमका उद्धार हो गया। लोभ से बढ़कर संसार में दुख नहीं है। क्योंकि लोभ के यश ही प्राणी इस लोक और परलोक में विविध प्रकार के कष्टों का प्राप्त करता है। मरणांत कष्ट और नरक की यातनाएँ भी इसी लोभ के कारण प्राप्त होती हैं। इसलिये लोभ भयकर दुःख का कारण है। लोभ से होने वाले दुःख से मुक्त होने के लिये आचार्य न सत्तोय का सुख कहा है। सत्तोय से बढ़कर संसार में कोई सुख नहीं है। कहायत भी प्रसिद्ध है कि— 'सत्तोय परम सुखम्' कपिल ब्राह्मण ने इसी सत्तोय के कारण केषल ज्ञान प्राप्त कर लिया था। राजा न राज्य तक भी अर्पण करने का यत्न दिया, किंतु सत्तोय पर आरुढ़ हुए कपिल का ये सब नीरस मालूम हो गये। उसने यह कहायत चरितार्थ कर दी कि—

गो धन, गज धन, रत्न धन, कचन ज्ञान सुखान ।
जय आये सत्तोय धन, सब धन धूलि समान ॥

बुद्धि आदि कैसे मनुष्य को भजती है—

बुद्धि अग्रह भयए विणीय,
कृद कृशील भयए अकिन्ती ।
समिन्न चित्त भयए अलब्धी,
सद्योद्विगस्त भयए सिरीश्र ॥५३

छाया अनुवाद

जो शांत और विनयी उनको भक्ति भजती ।
क्रोधी कृशील का सदा अकीर्ति मिलती ॥

अस्थिर चित्त वाले धीन मदा रहने हैं ।
सतपथ के पथिक लक्ष्मी धरण करते हैं ।

५ शब्दार्थ—अचट—क्रोध रहित तथा (विष्णु) विनयशील को (बुद्धि) बुद्धि भजती है । अकिञ्ची—अकीर्ति (कुट्ट) क्रोधी य (कुशील) कुशील को भजती है । अलक्ष्मी—दरिद्रता (समिप्रचित्त) चञ्चल और ज्ञान-विस्त वाले का (मयप) भजती है । सिरीअ—लक्ष्मी (सद्योद्विग्न) सत्य मार्ग में स्थित पुरुष को ।

भाषाय—क्रोध रहित और विनीत मनुष्य को बुद्धि भजती है । माधी और कुशील मनुष्य अकीर्ति को पान हैं । चञ्चल हृदय वाले दरिद्रता के दास होते हैं, और सत्यमार्ग में स्थित पुरुष लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं ।

विश्लेषण—इस गाथा में यह बताया गया है कि बुद्धि आदि कैसे को भजती है ? सबसे पहले यह बताया गया है कि क्रोध रहित विनीत मनुष्य को बुद्धि धरण करती है । क्योंकि ज्ञान प्राप्ति के अनेक कारणों में विनय प्रधान कारण है । आचार्यों ने विनय पाँच प्रकार का कहा है—गुरुजनों के आने पर उठकर खड़े होना १ अञ्जलि जोड़ना २ उनका बैठने के लिये आसन देना ३ भक्ति करना ४ और माधवपूजक सेवा करना ५ । इसी-लिये शास्त्र में कहा है कि—'यद्यधर्मस्त विण्मा मूल परमा से मोक्षदा ।' अर्थात्—विनय धर्म का मूल है और मोक्ष उसका फल है । विनय के कारण ही राजमन्त्री अमयकुमार बुद्धि का सागर समझा जाता था । इसी प्रकार क्रोध और घुरे आचरण वाले को अकीर्ति सेवन करती है । अर्थात् जिसमें क्रोध है

और जिसका आचरण गिरा हुआ है, व सार में उसकी अकीर्ति अनायास ही फैल जाती है। अकीर्ति दरिद्रता की सहचारिणी है। इसलिये कहते हैं कि समिधचित्त यानी चिन्ता से भग्न हृदय वाले को दरिद्रता भजती है। क्योंकि जिसका चित्त ही स्थिर नहीं उसको द्रव्य-लक्ष्मी-धन या भाग्य लक्ष्मी-ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इसलिये वह दोनों प्रकार की लक्ष्मी से घञित रहता है। इससे प्रतिकूल जो सत्य में स्थित है, उसको लक्ष्मी धरण करती है। राजा विक्रमादित्य सत्यमाग में स्थिर होने व कारण ही विस्तीर्ण राज्य का म्धामी पना। येतालादि विविध भय के कारण भी उसका बिगाड नहीं कर सके।

कौन किसको छोड़ता है—

चयति मिश्राणि नरं क्यग्धं,

चयति पाषाद् मुणिं जयत ।

चयति सुफलाणिसराणि दसा,

चयति युद्धी कुविय मणुष्य ॥६॥

छायानुवाद

एतन्न पुष्ट्य को मित्र छोड देत है ।

सयमरत मुनि से पाप दूर भगते है ॥

सूखे सरयर को छोड हस उड जाते ।

स्यो क्रोधी जन मति-हीन टोकर छाते ॥

शब्दार्थ—मिश्राणि—मित्र जन (क्यग्ध) एतन्न (नरं) मनुष्य को (चयति) छोड़ते हैं। जयत—सयम में यत्न करन वाले (मुणि) मुनि को (पाषाद्) पापकर्म (चयति)

१। सुक्काणि-घूरे (सराणि) सरो को (हसा) हंस (चयति) छोड़ते हैं । युक्ती युद्धि (कुविष) कोधी (मणुस्त) मणुष्य को (चयति) छोड़ती है ।

भाषार्थ--हृतपन मनुज को मित्र छोड़ते हैं । सयमी मुनि को पाप छोड़ते हैं । सूरे हुए तालाब को हस छोड़ते हैं और कोधी मणुष्य को युद्धि त्यागती है ।

वियेधन--सर्व प्रथम हृतपन पुरुष को मित्र छोड़ देते हैं । अर्थात् जो किय हुए गुण या उपकार को भूलन वाला है, योग्य मित्र उसका मग नहीं करत हैं । क्योंकि हृतपन का भार पर्यंत स भी अधिक मागा गया है । २ प्रयत्नशील साधु को पाप छोड़ देते हैं । अर्थात् जो साधु खान-पान, रहन-सहन व माया आदि प्रवृत्तियों में समयशील है उनके पाप शीघ्र ही छूट जाते हैं । ३ सूरे सरवर को हस छोड़ देते हैं । देया जाता है कि जब सरोवर में पानी नहीं रहता और कमल आदि सूख जाते हैं, तब उसके आधर में रहे हुए हस आदि पक्षी भी उसे छोड़कर चले जाते हैं । कहा भी है—

वृक्ष क्षीणफल त्यजति विद्वगा, शुष्क सर सारसा ।
निर्गन्ध कुसुमं त्यजति मधुपा, दग्ध वनात् मृगा ॥
निर्द्रव्य पुरुष त्यजति शणिका, भष्ट नृप सेवकाः ।
सर्वे स्थार्यशब्दाद् रमति पुरुषा, नाकस्य को घञ्जमः ॥

अर्थात्--फल रहित वृक्ष का पक्षी छोड़ देते हैं । सूखे तालाब को सारस और ग घ रहित वृक्ष को भ्रमर छोड़ जाते हैं । जले हुए वन को मृग छोड़ देते हैं । द्रव्य हीन पुरुष को

गणिका, तथा पद स्रष्ट राजा को सेवक छोड़ जाते हैं। क्योंकि सभी स्वार्थीयश रमण करते हैं। परन्तु वास्तव में किसी का कोई प्यारा नहीं है।

अथ गुण की अपेक्षा कौन गुण कैसे मनुष्य का त्याग देता है, यह बताते हैं। ४ क्रोधी मनुष्य को बुद्धि त्याग देती है। क्योंकि क्रोध के कारण बुद्धि मलिन हो जाती है और ज्ञान तनु भी कमजोर हो जाते हैं। जिससे निरंतर क्रोध करण वाला संदम हो अपने बुद्धि बल का खो बैठता है।

दिन २ को उपदेश देना व्यर्थ होता है—

अदय अत्ये कहिये विलायो,
असत्पदारं कहिये विलायो ।
विक्रिषत्त चित्त कहिये विलायो,
बहु बुसिस्मे कहिये विलायो ॥७॥

द्यागनुयाद

बोली बातों का ध्यान है दुःखकारी ।
असमय पुष्ट्य को कहना भी दुःखकारी ।
विक्षिप्त मनुष्य को कहना है दुःखदायी ।
अविनीत शिष्य-गुरु का कहना दुःखदायी ॥

शब्दाय—अदयअत्ये—किसी गोज के खा जान पर या गई थात क दिपय में (कहिये) कहना (विलायो) विलाप का कारण है। असत्पदारं-असमय का (कहिये) कहना (विलायो) विलाप का कारण है। विक्रिषत्तचित्त-सम्मान बिस्त वाले का और (बहु बुसिस्मे) अविनीत शिष्य या गुरु को कहना भी (विलायो) विलाप का कारण है।

जघु कारण से ही मूर्ख लाल हो जाते ।
सच्चे मुनि तो निज आत्म-तत्त्व अपनाने ।

शब्दार्थ—दृष्टपरा—साधारण से अपराध पर दृष्ट विधान करने वाले (दुष्टादिवा) दुष्ट स्वामी (दृष्टि) होते हैं । विद्याधर-विद्याधर (मतपरा) मंत्र के साधन व प्रयोग में तत्पर (दृष्टि) होते हैं । मुग्धानरा-मूर्ख मनुष्य (कौशल्या) साध करने में और (सुमाहृणो) सच्चे साधु (तत्परा) तत्त्व विचार में तत्पर (दृष्टि) होते हैं ।

भावार्थ—साधारण से अपराध पर ही दृष्ट विधान करने वाला दुष्ट राजा हाता है विद्याधर मंत्र के साधन व प्रयोग में तत्पर होते हैं । मूर्ख मनुष्य छोटासा कारण पाकर अध्याय बिना कारण भी मोघ में लाल हो जाते हैं और सच्चे साधु सदा तत्त्व विचार में प्रयत्नशील रहते हैं ।

विवेचन—दूसरों के मन का विद्य करना दुष्टों का काम है । इसलिये अथ दुष्ट राजा आदि के लक्षण कहते हैं—1 दुष्ट राजा सदा दृष्ट दृष्ट में तत्पर होते हैं । क्योंकि वे यह समझते हैं कि मेरे दृष्ट की उग्रता से लोग भयभीत रहेंगे और कोई भी मेरे सम्मुख कुछ गद्दी बोल सकेगा । जिस राजा की जनता पर घाक न जमी हो वह राजा ही कैसा ? अथ इन्द्र प्रिय के अनुसार व हर समय अपनी दुष्ट नीति का ही प्रयोग करने रहते हैं । 2 विद्याधर अधिक्ता से मंत्र साधना में तत्पर होते हैं । क्योंकि साधना के द्वारा अधिकाधिक विद्य यज्ञ प्राप्त करना ही उनका प्रधान लक्ष्य होता है ।

३ मूर्ख मनुष्य मोघ करने में तत्पर हात है । चाहे उ-

योग्य शिक्षा भी दी जाय, वे उसे विपरीत ही समझते हैं। राघव ने अपने द्वित मित्रों को भी इसी मूर्खता से शत्रु समझ लिये थे और विनीषण जैसे योग्य सलाह देने वालों का भी तिरस्कार कर दिया था। इसलिये कहा है कि—

‘उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकीर्णाय न शक्यते’

और भी—भीख उनको दीजिये जोको सीख सुहाय।

सीख दीगी धानरा को, घर गया को जाय।

यथा च— उपदेशो न दातव्य पादशो तादृशे नरे।

यथा धानर-मूर्खेण, सुगृही निगृही हता।

इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मूर्ख मनुष्य बिना कारण भी कौपातुर हो जाने हैं। और वे अपने सलाहकार का भी नाश करना चाहते हैं।

४ शोध को त्यागने वाले सत्त होते हैं। अतः साधुओं का सक्षण बताते हैं। उत्तम साधु सदा तत्त्व चिन्तन में तत्पर रहते हैं। क्योंकि आत्म तत्त्व आदि पारमार्थिक बातों के सिवाय अन्य ससार के विषय उनकी नीरस मालूम होते हैं, और वे ससारी प्राणी से अपनी विशेषता भी इसी में ममकृत हैं कि अधिक से अधिक समय तत्त्व चिन्तन में बिताया जाय। तत्त्व चिन्तन भाष्य प्रकार की तपस्या है। इसलिये तप आदि की शोभा दिखान है—

मोहा भवे उगगतचस्म कृती,
तमादि जोगो उदस्रमस्त सोदा।

नाथ सुभाण चरणस्स सोढा,
सीसस्स सोढा विणय पवित्तो ॥६॥

छायानुवाद

है कठिन तपस्या शोभित सत्शक्ति से ।
उपशम की शोभा समाधिगुत् भावों से ।
शुभ-ध्यान ज्ञान से शोभित क्रिया बखानी ।
शिष्यों की शोभा विनय-शीलता मानी ॥६॥

शब्दार्थ—(उगगतवस्स)—उग्रतपस्वी की (पत्नी) क्षमा है (उवसमस्स) उपशम भाव की (समाधि जोगो) समाधि भाव है (चरणस्स) चारित्र्य की (सुभाण) शुभ ध्यान और (नाथ) ज्ञान से (सीसस्स) शिष्य का (विणय) विनयशीलता से (सोढा) शोभा (भवे) होती है ।

भावार्थ—उग्र तपस्वी की क्षमा से, उपशम भाव की स धियोग से, चारित्र्य धर्म का शुभ ध्यान और विचार पूर्ण ज्ञान से और शिष्य की विनय शीलता से शोभा होती है ।

विवेचन—साधुपण तप उपशम आदि भावों की साथ से जाता है । अतएव इस गाथा में यह बताया है कि तप उपशम व चारित्र्य आदि की शोभा किससे जाता है ।

१ क्षमा—कठिन तप की शोभा क्षमा है । जिस तपस्या साथ क्षमा नहीं, वह दृष्टिगत तप है । क्योंकि तपस्या करके यदि क्रोध का नहीं मिटाया तो वह तप कर्म निजरा में सा

नहीं होकर कषाय भाव के कारण कर्म बंध का कारण बन जाता है। इसलिये कहा है कि—

क्रोध धर्मको तप तपे, एक सड़े जो गाल।
तिण में नफो है घणो, मेटो मन की भाल ॥

महामुनि विस्त ने उग्र तपस्या के साथ क्षमा रखते हुए यही २ सन्धियाँ प्राप्त करली थी। साढे सोलह देश को एक साथ भस्म कर देने वाली तेजो लेश्या की शक्ति भी उनको प्राप्त हो गई थी। परन्तु उद्दाने अपमान सहकर भी क्रोध करना अच्छा नहीं समझा। इसी के फल स्वरूप वे चाराधक बने और दूसरे ही भय में मुक्त हो गये। यह है तपस्या के साथ क्षमा रखने का महत्व।

२ उपशमभाव—क्षमा उपशम भाव है। इसलिये उपशम भाव की शोभा कहते हैं। ज्ञान दर्शन और चारित्र की समाधि उपशम भाव की शोभा है। ज्ञान दर्शन और चारित्र के अभ्यास में दिखाऊ उपशम यागी शांतता ता एवेन्द्रिय वा जड में भी विद्यमान है। फिर मनुष्य के उस ज्ञान शून्य उपशम की विशेषता ही क्या? इसलिये कहा है कि ज्ञान पूर्वक योगों की समाधि ही उपशम भाव की शोभा है। अतः यह बताते हैं कि उपशम को शोभित करन वाले चारित्र की क्या शोभा है?

३ चारित्र—शुभ ध्यान युक्त ज्ञान से चारित्र की शोभा होती है। जिस क्रिया में ज्ञान नहीं यह केवल अज्ञान कष्ट है। मूले प्यासे तो पशु भी कई दिन रह जाते हैं, किन्तु यह डाका कष्टानुभव तप नहीं कहाँगा। इसी प्रकार समाज के तुच्छ सुखों

के लिये कई लोग फलाहार पर ही रहते हैं और प्रत करते हैं । स्त्री समागम भी नहीं करते हैं । कठिन आसनों से जगल में मग्न की साधना करते हैं । किन्तु हिंसा भृश चोरी और स्त्री सग के छ्राह देने पर भी उनकी यह क्रिया चारित्र नहीं बढ़ाती । क्योंकि उसमें शुभ ध्यान और ज्ञान नहीं है । इसलिये कहा है कि धर्म ध्यान व साथ सद्ज्ञान वाली क्रिया ही चारित्र है, और सम्पन्नज्ञान ही चारित्र की शोभा है । विधिपूर्वक चारित्र की शिक्षा शिष्य बनने से मिलती है । अतः अथ शिष्य की शोभा बताते हैं ।

४ शिष्य—'विनय शिष्यस्य भूषणम्' अर्थात् शिष्य की शोभा विनय से होती है । जहाँ विनय नहीं वहाँ ज्ञान प्राप्ति की योग्यता नहीं होती है । जो ज्ञान का अधिकारी नहीं वह फिर शिष्य कैसा ? इसलिये शिष्य को चाहिये कि वह विनय सम्पन्न रहे । द्रव्य से गुरुजनों की अपेक्षा अपना आसन नीचा रखे । नीचे स्थान पर बैठे और नीचा होकर ही वन्दन करे । क्योंकि शास्त्र में कहा है—

विष्णुश्चो जित्वा सामण्यं मूलं, विष्णुश्चो निध्याण-साहश्चो ।
विष्णुयाश्चो वि १-मुष्कम्प कश्च घम्मो कश्चो तत्रो ।
विष्णुयाश्चो नाण नाणाश्चो दसण, दसणाश्चो चण्ण
चरणेदितो माण्य, माण्ये सुह अखावाह ।

अर्थात्—विनय जित्वा शान्त का मूल और विनय ही निर्वाण का साधन है । जो विनय से रहित है उसको धर्म क्या और तप क्या ? विनय स ज्ञान और ज्ञान स दर्शन की प्राप्ति होती है । दश । से चारित्र और चारित्र स मोक्ष मिलता है ।

जिस मोक्ष में निराशाघ सुख की प्राप्ति होती है। इसलिये मुमुक्षु शिष्य को त्रिनय के आराधन में सदा यत्न करना चाहिये। पथक मुनि ने इसी दिनय के प्रभाव से शिथिल बने हुए अपने गुरु का उद्धार किया था। शैलक राजर्षि को जिस समय रुग्णाश्रय के कारण एक जगह ठहरना पड़ा था। उस समय उनके सासारिक पुत्र जो कि राजा थे, उन्होंने महाराज के औषधोपचार का प्रबंध किया। जिस से कुछ ही समय में शैलक ऋषि स्वस्थ हो गए। किंतु सरस और मादक पदार्थों के कारण समय भाव की तरफ उनको ऐसी उदासीनता आ गई कि स्वस्थ होने पर भी विहार करने को इच्छा नहीं हुई। परिणाम स्वरूप अग्रे ४६६ शिष्य शैलक राजर्षि को सूचित कर स्वयं देशांतर में विहार कर गये। पथक मुनि ही मात्र उनकी सेवा में रहे। गुरुजी के प्रमादशील बन जाने पर भी वे निरंतर उनकी सेवा में तैयार रहते थे। एक समय चातुर्मासिक पर्य का दिन था। पथक मुनि प्रतिक्रमण करके क्षमापना करते हुए गुरु महाराज के चरण स्पर्श किये। चरण पर हाथ लगते ही शैलक राजर्षि की नाद खुल गई। उन्होंने क्रोध में आकर कहा—कौन है ? किसने मुझे असमय में जगा दिया ? पथक ने नम्रता से उत्तर दिया— भगवन् ! यह तो मैं ही हूँ। आज चौमासी प्रतिक्रमण की क्षमा-याचना करने के लिये मैंने आपक चरण का स्पर्श किया है। इसलिये क्षमा करें। गुरु ने पूछा—क्या आज चौमासी पर्य है ? पथक ने नम्रता से कहा—हाँ महाराज, आज कार्तिकी चौमासी का दिन है। गुरुजी सोचने लगे—क्या मैं इतना शिथिल बन गया हूँ कि चार महीने के लम्बे काल का भी मुझे चेतना नहीं। अहो ! कितनी प्रमादशीलता ! जिस समय मुझे

आत्म शुद्धि करने को सत्पर रहना चाहिये उस समय मैं सोया पड़ा हूँ। धिक्कार है मुझे। घासनव में मेरी इस प्रमादशीलता से ही अथ शिष्यों ने मुझे त्याग दिया है। अथ मुझे अपने पूर्व दोषों की शुद्धि करके यहाँ से शीघ्र ही विहार कर देना चाहिये। ऐसा सोच कर शैलक राजपि ने अपनी शुद्धि करली और जनपद में विचरते हुए फिर से अपन सब शिष्यों के साथ पूर्ववत् आत्म कल्याण की साधना करन लगे। इस प्रकार पथक मुनि की अग्रतान भाव से की गई सेवा ने शैलक राजपि को पुनः जामृत कर दिया था। इसीलिये कहा है कि शिष्य की शोभा धिनय से होती है।

शिष्य ब्रह्मचारी होता है। अतः अथ यह बताया जाता है कि ब्रह्मचारी कैसे शोभा पाता है—

अभूपणो सोदह धमयारी
अकिञ्चणे सोदह दिक्खघारी ।
धुद्धिजुञ्जो सोदह रायमती,
लज्जापुगा सोदह एकपत्ती ॥१०॥

छायाणुवाद

नादे पन से शोभित होता ब्रह्मचारी
निष्काचन शोभित होता हं व्रतधारी ।
है प्रशस्त धुद्धि ही राज्यगत्री की शोभा ।
लज्जा से होती पतिव्रता की शोभा ॥१०॥

शब्दार्थ—अभूपणो—आभूपणों से रहित (धमयारी) ब्रह्मचारी (सोदह) शोभा पाता है। दिक्खघारी—दीक्षा धारण

किया हुआ साधु (ब्रह्मचर्यो) नित्योमी पन से (सोदर) शोभा पाता है। बुद्धिजुआ-बुद्धि सम्पन्न (रायणी) राज्य मंत्री (सोदर) शोभित होता है। एग-एक पतिघाली पतिघता स्त्री (लज्जापुत्रा) लज्जायुक्त (सोदर) शोभा पाती है।

भाषार्थ—मोना चादी आदि के गहनों से रक्षित ब्रह्मचारी शोभा पाता है। वीजा धारण किया हुआ साधु धनकनकादि का त्यागी होकर शोभित होता है। राज्यमंत्री कुशल बुद्धि से शोभा पाता है और पतिघता स्त्री लज्जा से शोभा पाती है।

विशेष—ब्रह्मचारी बाह्यी आभूषणों से रक्षित शोभा पाता है। शरीर को अतृप्त करने के लिये तोग केशालकार ब्रह्मालकार तथा सोम चादी के आभूषणों से वेद वा शृंगार करत है। परन्तु ब्रह्मचारी के लिये इन आभूषणों का अभाव ही शोभा का कारण है। बाह्यी अलकार तो उनके लिये दूषण बड़े गये हैं। जैसा कि—

सुप्त शय्यासन घट्ट, ताम्बूल स्नागमर्दाम्।
दन्तकाष्ठ सुगन्ध च, ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥

तथा च—

ताम्बूला सूदन वस्त्राणि, स्त्री कथेन्द्रिय योपराम्।
दिवा निद्रा सदा प्राची, व्रतीना पतिताणि ५८।

अर्थात्—पलग आदि सुप्त-शय्या मदीन घट्ट ताम्बूल-पान आदि, स्नाग मर्दा = तकाष्ट और सुगन्धित वस्तुओं का सेवन ये ब्रह्मचर्य के दूषण हैं।

ब्रह्मगरी दीक्षित होता है। इसलिये कहते हैं कि 'आकाचन शोभते दीक्षाधारी'। त्यागी मुनि की शोभा अकिंचनपन है। जहाँ द्रव्य समग्र होगा, वहाँ स्त्री सग आदि अन्य प्रपञ्चों का बढ़ना सहज है। इसलिये जो दीक्षित हो गया है उसका कांचन आदि के समग्र से दूर रहना चाहिये। इसी में उनकी शोभा है। लोकात्कि प्रसिद्ध है कि—'साधु कौड़ी रखे तो कौड़ी का'। काचन त्यागी की तरह जो धनधनकादि के स्वामी हैं, ऐसे गृहस्थियों की शोभा बताते हैं— ३ राज्यमंत्री या प्रधान की शोभा बुद्धि बल से होती है। क्योंकि राज्य का कायभार कुशल मंत्री के द्वारा ही चलता है। जिस राजा का मंत्री कुशल न हो उसका राज्य सुरक्षित नहीं रहता। इसलिये कहा गया है कि— 'मन्त्रि-हीनश्च यो राजा तस्य राज्यं विनश्यति' क्योंकि मंत्री राजा का आधा अंग होता है। अतएव उसका अभयकुमार का तरह बुद्धि सम्पन्न होना ही शोभा का कारण है। ४ पतिव्रता स्त्री लज्जा से शोभा पाती है। जो लज्जा रहित होकर अमर्यादित घूमता है लोक में वह निदनीय समझी जाती है। जिसकी ओल में लज्जा है वही कुलीन स्त्री है। संकष्टों पुराहया होने पर भी लज्जाशील व्यक्ति सुधार मकता है लेकिन लज्जा हीन व्यक्ति का सुधार असंभव है। इसलिये प्रत्येक पुरुष को घुरे काय करने में लज्जा करनी चाहिये। यही लज्जा पतिव्रता का भूषण है।

अपनी आत्मा ही शत्रु और मित्र होनी है। इसको बताते हैं—

आपा अरा होह अणवद्विअस्स
अ पा जसो सीलमथा नरस्स ।

अप्पा दुरप्पा अणवट्टिअस्स,
अप्पा जिअप्पा सरण गइ य। ११।

छावानुशा

अस्थिर जनकी आत्मा ही शत्रु कहती है।

है शीलवान नर की आत्मा यजु कहती है।

चंचल नर की आत्मा ही दुष्ट कहती है।

है इन्द्रियजित आत्मा ही शरण कहती है।

शब्दार्थ—अणवट्टिअस्स—अस्थिर चित्त वाले के अणु शत्रु कहती है। जिअप्पा—शीलवान (नरस्त) मनुष्य की (अ ग) आत्मा है। सरण गइ य—शरण का कारण है। अणवट्टिअस्स—अव्यवस्थित चित्त वाले के (अप्पा) आत्मा ही (दुरप्पा) दुष्ट मा है। जिअप्पा—शीलवान की (अप्पा) आत्मा ही (सरण) शरण (गइ) नर (गइ) गति है।

भावार्थ—अस्थिर चित्त वाले के अणु शत्रु कहती है। शीलवान मनुष्य की आत्मा ही शरण कहती है। अव्यवस्थित मनुष्य की आत्मा दुष्ट कहती है। शीलवान की आत्मा ही शरण और गति कहती है।

विशेष—मनुष्य का चित्त शत्रु कहती है। शीलवान मनुष्य की आत्मा ही शरण कहती है। अव्यवस्थित मनुष्य की आत्मा दुष्ट कहती है। शीलवान की आत्मा ही शरण और गति कहती है।

शत्रु—अनवस्थित आत्मा ही अपना शत्रु है। क्योंकि जिसके मन, ध्यान और वाय याग स्थिर नहीं, उसके शत्रुओं की कमी नहीं रहती। शत्रु न अपनी मातृसिख चंचलता और परस्त्री गमन की भावना से ही सीता का हरण किया था। यदि उसने सीता का हरण नहीं किया होता तो उसे राम और लक्ष्मण क्यों मारते ? इसलिये शत्रु को मारने वाले शत्रु राम लक्ष्मण नहीं, किंतु अराजित मन में उसकी सीता हरण रूप दुर्भावना है।

यश—शीलवान् की आत्मा ही यश का कारण है। जिसमें सदाचार का रस है, उसको अपनी कीर्ति फैलाने के लिये लोगों में घोषणा करने की आवश्यकता नहीं होती और न ऐसे सर्व कर नाम कमाने की ही इच्छा होती है। उसके पवित्र आवरण की सुरक्षा से जनता स्वयं ही कीर्ति करने लगती है। सेठ सुदर्शन न इसी शील के गुण से सत्कार में अपना अमर नाम प्राप्त किया था।

दुष्ट—प्रेतल चित्त वाले की आत्मा ही दुष्ट आत्मा है। दुर्जनों के द्वारा होने वाला नाश उपायों से मिटाया जा सकता है। परंतु अपने चित्त की चंचलता से होनेवाला नाश उमर लोक में दुष्टदायी होता है। इसलिये यही सच्चा दुरात्मा है।

हरण—यश म की गई अपनी आत्मा ही शत्रु और उत्तम गति की कारण है। शरत् में कहा है कि—

अप्या गईं धेयरणी, अप्या मे वृद्ध-सामती ।
अप्या कामदुहा धरु अप्या म नदण धण ॥

अर्थात्—अपनी आत्मा ही चैतरणी १दो और नरक के शालमली घृत्न के समान दुःख देने वाली है। आत्मा ही कामधेनु और न इन घन के समान सुख देनेवाली है। इसलिये दूसरे लोगों पर शत्रु और मित्र की कल्पना करना व्यर्थ है। अगर अपनी आत्मा को जीत लिया जाय तो स्वप्न में भय शत्रु रहेंगे ही नहीं। इसीलिये कहा है कि जिनेन्द्रियपन ही सच्चा शरण और सद्गति का कारण है।

कनध्याकर्तव्य क्या हैं ? यह बताते हैं—

न धम्मवज्ज परमत्थिवज्ज,
ए पाणिहिंसा परम अकज्ज ।
न पमरागो परमत्थि यधो,
न बोधिलामो परमत्थि लामो ॥१२॥

छाया अनुवाद

द्वि धर्म काम से बढ़कर काम नहीं है ।
प्राणीवध से बढ़कर दुःकर्म नहीं कोई ॥
ए स्नेह-राग सम बढ़ा वध नहीं हुआ ।
हे बोधिलाम सा उत्तम लाम न हुआ ॥१२॥

शब्दार्थ—धम्म वज्ज—धर्म काय को छोड़ कर (पर) दूसरा (कज्ज) कार्य (ए अथि) नहीं है। पाणि हिंसा—जीव हिंसा से बढ़कर (पर) दूसरा (अकज्ज) अकार्य नहीं है। पेमरागोपर-प्रेम राग से बढ़कर दूसरा (यधो) वधन नहीं है। बोधिलामो—बोधिलाम के सिवाय (पर) दूसरा कोई (लामो) लाम (न अत्थि) नहीं है।

भाषार्थ—धर्म कार्य को छोड़ कर दूसरा कार्य नहीं है। प्राणिवध से बढ़कर दूसरा कुकर्म नहीं है। स्नेह-यधन से बढ़कर दूसरा यधन नहीं और सम्यग्ज्ञान के बढ़कर दूसरा लाभ नहीं है।

विशेष—जितेन्द्रियपन धर्म का काम है। इसलिये इस गाथा में बताया गया है कि सपसे बड़ा काम कौनसा है ?

कार्य—धर्म काम से बढ़कर अन्य कोई कार्य नहीं है। ससार के करणीय काम तो इस लोक में ही उपयोगी होते हैं, परन्तु धर्म इस लोक और परलोक दोनों में उपयोगी बनता है। अतः करने योग्य कामों में धर्म को बड़ा कहा है। भरत महाराज को जिस समय आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट होने की खबर मिली, जा कि चक्रवर्ती पद के लिये मंगल सूचक बात थी। उसी समय यह भी खबर मिली कि नगरी के बाहर भगवान् ऋषभदेव पधारे ह। तब उन्होंने चक्ररत्न की खुशी न मना कर भगवान् ऋषभदेव को ब दार करने के लिये जाना ही उत्तम समझा। क्योंकि चक्ररत्न की पूजा के सामने भगवान् ऋषभदेव को धन्दन करना उन्होंने बड़ा समझा था। अकार्य—जीव हिंसा से बढ़कर कोई अकर्तव्य नहीं है। क्योंकि हिंसा धर्म समाज और राज्य से निषिद्ध है। यह इस लोक में ही नहीं-परलोक में भी दुःप्रदायी है। क्योंकि हिंसा करने में अन्य पापों का भी सहज ही सेवन हो जाता है। इसलिये जीव हिंसा जैसा दूसरा कोई अकर्तव्य नहीं है।

यध—यधन कई प्रकार के हैं। उनमें स्नेह-राग का यधन से बड़ा है। स्नेह यधन से बढ़कर कोई अन्य यधन नहीं

है। क्योंकि लोहमय भट्ट खला के बघन तो 'मनुष्य तोड़ सकता है परंतु स्नेह का बघन तोड़ना कठिन है। राय वैभव का त्याग कर मुनि बने हुए भी आद्रकुमार मोहयश मयम से गिर गये और स्त्री के स्नेह भाव पर मुग्ध होकर ऐसी प्रतिज्ञा कर गये कि जब तक तुमको पुत्र का अवलम्बन नहीं होगा, मैं साधु नहीं बनूंगा। प्रतिज्ञा के अनुसार जब पुत्र हो गया तब आप मातु धनन को तैयार हो गये। उनकी स्त्री ने भी अपना सहारा हूँ निकासना। जब तक बालक योग्य न हो जाय तब तक उसने घरघरा चलाना निश्चिन किया। जब उनके पुत्र ने मा को घरघरा चलाने देखा तो उसने अपनी मा से कहा-मा, तुम घरघरा क्यों चलाती हो? क्या अपने यहां पैसे की कमी है? पिताजी के पुण्य से अपार धन मौजूद है। क्यों तब बैठे रूपाये तब भी समाप्त न हो। फिर यह गरीबी का घ-घो क्यों कर रही हो। मा न उत्तर दिया-वेटा-तुम अभी छोटे हो। पेल-कूद और पढ़ाई को ही अपना मसारा समझते हो, परंतु मुझे अपना मसारा चलाने के लिये सबकुछ देखना पटना है। तुम्हारे पिता तो बल साधु होने वाले हैं। फिर मरे जीवा का सहारा क्या होगा। अभी तो तुम्हारे पिताजी की सेवा से भी मेरा समय पीत जाता है, किंतु उनके चले जान पर मैं अपना समय कैसे बिताऊँगी? निश्चिन्ती बेंठी रहना से या इधर उधर फिरा से तो ममार म निदा होगी। इसलिये मैं न सुख से अपना समय बिताने के लिये चरये का सहारा लिया है। अब यही मेरी लज्जा रश्न वाला है। पुत्र बोला-मा, क्या पिताजी दमको छुटकर चले जायगे? नहीं, भला वे यहा से कैसे जा सकते हैं? मैं उन्हें नहीं जान दूंगा। जो अभी उनको डोरी से बाँध देता हूँ। यह कहकर वह अपने पास में मोड़े हुए पिताजी को बच्चे सूत

से बाधने लगा । आद्रकुमार भी बालक की पात सुनकर चकित हो गये । ये मन में सोचने लगे कि बालक का मेरे पर कितना स्नेह है ? जब इसकी ऐसी इच्छा है तो यह जितनी बार सूत से लपेटे, उतने धर्प फिर घर में रह जाना चाहिये । बालक ने सूत के १२ लपेटे तगा दिये । उससे ये १२ कच्चे सूत के बघन भी आद्रकुमार के हाथे यजमय बन गये । इसीसे उनको फिर १२ धर्प संसार में बिताने पडे । इसलिये कहा है कि स्नेह बघन सब बघनों से बड़ा है ।

लाम—बोधि यानी सम्यक्त्व लाम से बढ़कर संसार में कोई लाम नहीं है । शास्त्र में कहा है—

लभति विडला भोए, लभति सुर सपया ।
लभति पुत्र मिच्छाणि, एगो धम्मो सुदुल्लहो ।

अर्थात्—संसार के विस्तीर्ण भोग जीव को कई बार मिले हैं । देवों की सम्पदा और पुत्र, मित्र आदि सब-घ भी मिल सकते हैं । लेकिन एक धर्म यानी सम्यक् धरुद्धा रूप बोधि धर्म का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है । निरन्तर बेले २ तप करके चारित्र की साधना करने वाला भी श्रमव्य जीव सम्यक्त्व नहीं पाने सं संसार में लटकवा रहना है । नव प्रियेयक तक जानर उसकी प्रगति रुक जाती है । दूसरी तरफ जिसकी सम्यक्त्व का लाम हो जाता है, यह चारित्र के अभाय में भी संसार का अन्त कर लेता है । जैसा कि कहा है—

अतो-मुदुत्त-मित्तिपि फासिय द्दुज्ज जेहि सम्मत्त ।
तेसि अषड्ढ पोग्गल-परिपट्टो चेव सत्तारो ।

अर्थात्—जिस जीव ने अतमुंहुन जितने अल्प समय भी सम्बन्ध का स्पर्श-लाभ कर लिया है, उसके लिये अर्ध पुद्गल परावर्त काल ही सत्कार थाकी रहता है। यानी सम्बन्ध का लन पर जीव की मुक्ति निश्चित हो जाती है। इसलिये सम्बन्ध लाभ को ही सब लाभों से बड़ा बड़ा है।

किसका संसर्ग नहीं करना चाहिये—

म सेवियव्या पमया परकका,
 ण सेवियव्या पुरिसा अविज्जा।
 न सेवियव्या अहमा न ढीणा,
 ऽ सेवियव्या पित्तुणा मणुस्सा ॥१३॥

छायानुवाद

है परनारी नहीं सेवन करने लायक।
 नहीं मूर्ख पुरुष भी संगति करने लायक।
 नहीं नीच ढीन पर सेवा के हैं लायक।
 यों सुगलसोर भी नहीं मग के लायक।१३।

शब्दाय—परकका—दूसरों की (पमया) स्त्री का (न सेवियव्या) सेवन नहीं करना चाहिये। अविज्जा—मूर्ख (पुरिसा) पुरुष भी (न सेवियव्या) संसर्ग करने लायक नहीं हैं। अहमा-अधम-नीच मनुष्य और (ढीणा) ढीन मनुष्य भी (न सेवियव्या) सेवा योग्य नहीं हैं। तथा (पित्तुणा) सुगलसोर (मणुस्सा) मनुष्य भी (न सेवियव्या) संगति करने योग्य नहीं है।

भाषार्थ—पर स्त्री का सेवक नहीं करना चाहिये। मूर्ख मनुष्य संसर्ग के लायक नहीं है। नीच और हीन मनुष्य तथा सुगलघोर आदमी भी संगति करने योग्य नहीं है।

वियोग—सम्यक्त्व की प्राप्ति से यह प्राप्त होता है कि शास्त्र में द्वेष और उपादेय क्या है ? इसलिये यहाँ जितना संसर्ग द्वेष द्वारा से नहीं करता चाहिये उनका परिचय कराते हैं। पर स्त्री का सेवन नहीं करना चाहिये। संसार की शान्ति सुरक्षित रखने के लिये भी यह आवश्यक है कि मनुष्य अपनी वस्तुओं पर ही सन्तोष करे। दूसरों की सुन्दर चीजें देखकर भी उन्हें प्रहण करना नहीं चाहें। आज तक संसार में जितने भी युद्ध हुए हैं सब धन दारा और भूमि के कारण ही हुए हैं। जिन पर कि एक दूसरे की युद्ध विगड़ जाती है। इसलिये नीतिकारों ने कहा है कि—

परान पर वर्य च, पर शुष्या परस्त्रिय ।

पर वेश्मनि वाम च, दूरतः परियर्जेयेत् ।

दूसरों के अन्न, धन, शय्या और स्त्री तथा पर घर में निवास व मय युद्धिमान का दूर से ही छोड़ देने चाहिये। क्योंकि रावण और पद्मोत्तर जैसे राजाओं ने इसी पर-स्त्रीगमन की भावना से अपने प्राण पथ राज्य गमा दिये थे। यह इस लोक की तरह यह परलोक में भी दुर्गति का कारण होता है। इसलिये युद्धिमान को भूलकर भी पर स्त्री का सेवक नहीं करना चाहिये। पर-स्त्री गमन आदि कुकर्मों की भावना कुसंगति से होती है। इसलिये कहा है कि मूर्ख या असद्वृत्त वाले की संगति नहीं करनी चाहिये। कहावत है कि— ज्ञान घटे नर मूढ़ की संगत मूर्खों की संगति से छाग घाता है।

३ मूर्खों की तरह नीच मनुष्य भी सगति करने योग्य नहीं है। जिनको धर्म अधर्म का विचार नहीं होता वे नीच कहते हैं। उनकी सगति से सज्जन भी मलिन हो जाता है। धर्मराज युधिष्ठिर यदि दुर्योधन ही सगति नहीं करते तो जूप में राज्य गवाने का समय नहीं आता। यह कुसगति का ही फल है। इसलिये नीति कहती है कि—

दुर्जन परिहृतव्यो विद्यायाऽलङ्घतोऽपि सन् ।
मणिनाभूपित सर्पं, किमसौ न भयकर ।

अर्थात्—दुर्जन विद्या से युक्त हो तो भी त्यागने योग्य है। क्या मणि से भूपित होने के कारण सर्प की भयकरता चली जाती है! नहीं। इसी प्रकार विद्यावान भी दुर्जन, दुर्जन ही रहता है। अतः त्याज्य है।

४ दुर्जन चुगलखोर भी होते हैं। इसलिये कहा है कि गिश्तु गानी चुगलखोर का भी सग नहीं करना चाहिये। चुगलखोरों के घचा जैसे मीठे होते हैं वैसे ही उनके काम भयकर होते हैं। नीति में उनका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

नालिकेर समाकारा दृश्यन्ते केऽपि सज्जना ।
अये बदरिकाकारा, यहिरेव मनोरमा ।

अर्थात्—नारियल के समान यादिर से कठिन स्वभाव वाले वह सज्जन होते हैं, लेकिन दूसरे दुर्जन घोर (घेरफल) के समान ऊपर से ही मनोरम होते हैं भीतर तो कठोरता मरी रहती है। दुर्जन का स्वभाव होता है कि वह दूसरों के छोटे से छिद्र को तो बख लेता है, परन्तु अपन बड़े छिद्र को नहीं देखता। इसीलिये कहा है—

धल सर्वव माप्राणि, परस्मिन्नाणि पश्यति ।
 आत्मनो विद्यमानाणि पश्यताडपि न पश्यति ।
 अतएव-परोक्षे कार्य-हृत्तारं, प्रत्यक्षे प्रिय वादिनम् ।
 वर्जयेत्तादृश मित्र विपकुम्भ पयो-मुधम् ।

प्रत्यक्ष न मधुर पोहाने वाले और परोक्ष में काम बिगाड़ने वाले मित्र का भा त्याग कर देना चाहिये—

कुसंगति का निषेध करके अब सुसंगति का विधान करते हैं—

जे धम्मिया ते एलु सेवियव्वा,
 जे पडिया ते एलु पुच्छियव्वा ।
 जे साहुणो ते अभियदियव्वा,
 जे निम्ममा ते पडिलामियव्वा । १४।

छापानुवाद

जो धार्मिक हैं वे सेवा करने लायक ।
 जो पंडित हैं वे सग पूछने लायक ।
 जो साधु हैं वे वन्दन कर लायक ।
 जो निमम जा हैं वही दान के लायक ।

शब्दार्थ—जे धम्मिया—जो धार्मिक मनुष्य हैं (ते) वे (एलु) निश्चय से (सेवियव्वा) सेवा के योग्य हैं । जे पडिया—जो पंडित हैं वे निश्चय से (पुच्छियव्वा) पूछने योग्य हैं । जे साहुणो—जो साधु हैं वे अथर्व (अभियदियव्वा) नमस्कार योग्य हैं । जे निम्ममा—जो निर्मम हैं वे (पडिलामियव्वा) पारमार्थिक दान के सुपात्र हैं ।

भावार्थ—जो धार्मिक पुरुष हैं वे सेवा के योग्य हैं। जो पंडितजन हैं वे अवश्य तात्त्विक विषय में पूछने योग्य हैं। जो सात महात्मा हैं वे अवश्य घन्दनीय हैं। और जो निर्मम-ममता रहित हैं वे ही पारमार्थिक दान के सुपात्र हैं।

विवेचन—१ जो धार्मिक पुरुष हैं वे सेवा करने योग्य हैं। क्योंकि धार्मिक पुरुषों की सगति से धर्म भावना का संचार होता है। बड़े २ पापी भी धार्मिक पुरुषों की सगति से सुधर गये हैं। अर्जुनमाली जैसा प्रतिदिन ६ पुरुष और १ स्त्री की हत्या करने वाला भी भक्त सुदर्शन की सगति से तिर गया और भगवान की कृपा को पाकर उसी भय में मोह चला गया। इसलिये धार्मिक पुरुषों की सेवा करनी चाहिये।

२ जो तत्त्वज्ञ हैं उनसे तत्त्वज्ञान के प्रश्न पूछने चाहिये। पंडित वे हैं जो ज्ञान के साथ क्रियावान हैं। ऐसे पंडितों की सेवा से ही मन के संशय मिटने हैं। राजा प्रदेशी जैसा पूरा नास्तिक, जो शरीर से भिन्न आत्मा का अस्तित्व ही नहीं मानता था। वह भी केशीधमण जैसे पंडित मुनि की सेवा से आस्तिक हो गया। उसने केशीधमण से अपना संशय मिटाया और फिर राज्य का मोह छोड़ कर कठिन तप करना स्वीकार किया। फल स्वरूप दुर्गति में जानेवाली उसकी आत्मा स्वर्ग में गई। यह पंडितों की सेवा का ही परिणाम है। ऐसे ही सुखदेव सयासी ने धाररचा पुत्र से प्रश्न पूछ कर अपना संशय दूर किया था। इसलिये पंडितों से विनय पूर्वक पूछ पूछना चाहिये।

३ जो सन्त पुरुष हैं उनके सम्मुख जाकर धन

चाहिये । क्योंकि ये ही सच्चे पंडित हैं । साधु जनों के घदन से कर्मों की महान् निर्जरा होती है । घदन करने वाला जीव नीचगोत्र का क्षय करके उच्च गोत्र का यथ करता है । शास्त्र में कहा है—

‘वदगुण्य त्रीयामोय कम्म पपेइ, उच्चामोय कम्म नियघई,
सोहग्ग चण अपाडिइय आणाफल निघतेइ ।’ घदन से जीव
नीच गोत्र का क्षय करके उच्च-गोत्र का यथ करता है । उससे
अप्रतिहत सौभाग्य और अखंड आत्मा की प्राप्ति होती है ।
कहायत भी है—

सतन की सेवा किये, प्रभु रोक्त है आप ।

जिनके बाल रमाइये, उनके रोक्त थाप ।

इसलिये साधुओं के सम्मुख जाकर वदना करनी चाहिये ।
४ जो ममता रहित निर्लामी हैं वे प्रतिलाभ देने योग्य हैं । सत्पु
रुषों को आहार आदि देन से दाता को महान् लाभ प्राप्त
होता है । इसलिये इसको प्रतिलाभ कहा है । सगम ग्याले ने
यही इच्छा ल खीर पायाइ थी । लेकिन जिस समय वह खाने
को बैठा, उस समय उसकी पत्नी इच्छा हुई कि कोई महात्मा
आजाय और उनकी कृष्ण देकर खाऊँ तो अच्छा । प्रणयोदय से
उसके यहाँ महात्मा पधार गय । उसने थले प्रेम से डाकी
खीर का दान दिया । थाल पाली हो जाने पर भी इसको
दुःख नहीं हुआ । इससे फलस्वरूप उसको शालिभद्र की श्रद्धि
प्राप्त हुई । इस प्रकार सगम की पुण्य वृद्धि का कारण सत्पात्र
का दान ही समझना चाहिये ।

दान की धेष्टता का प्रधान कारण भाव है। इसलिये भव भाव की भयत्ता से पद की समानता दिखाते हैं—

पुत्राय सीताय सम विभक्ता,
रिसीय देवाय सम विभक्ता।
मुक्खा तिरिक्खाय सम विभक्ता,
मुया दरिद्राय सम विभक्ता ॥१५॥

छायाव्याख्यान

है शिष्य और पुत्र दोनों ही सम जानो।
मुनि होते दय समान धान यह मानो।
है मूर्ख मनुज को पशु तुल्य बनेलाया।
मृत और दीन जन को है सम समभाया।

शब्दार्थ—पुत्र-पुत्र (य) और (सीताय) शिष्य (सम विभक्ता) समान धेष्टीवाले हैं। रिसीय-ऋषि और (देवा) देव (समविभक्ता) समान होते हैं। मुक्खा—मूर्ख और (तिरिक्खा) तिर्यक् समान हैं। मुया—मरा हुआ और (दरिद्राय) दरिद्र (सम विभक्ता) समान समझे जाते हैं।

भावार्थ—पुत्र और, शिष्य, ऋषि और देव, मूर्ख और तिर्यक्, तथा मरा हुआ और दरिद्र समान वेष्टीवाले हैं।

विशेषण—पुत्र और शिष्य समान गिन लिये हैं। शास्त्र में दस प्रकार के पुत्र कहे हैं। जिसमें 'उत्तम शार्ङ्ग' शत्रुघातों वाली शिष्य का भी उल्लेख आता है। एक का सर्वथ शरीर के अंग से और दूसरे का धान से है। दोनों ही धिनय से मुक्त होते हैं। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य, देव और सत्कार

से उत्पन्न होता है। यदा जन्म देना वाला शरीर का पिता और शिवा से सस्कार देनेवाला आत्मा का पिता है। इसलिये पुत्र और शिष्य समान बह गये हैं। वेम ही श्रुति मुनि और देव समान बह गये हैं। देव विमान आदि द्रव्य श्रुति वाले होते हैं और मुनि भाव श्रुति वाले। समस्तुमार घमयती के रूप को देखा के लिये एक देव न बूटे प्राण का रूप बनाया और सिर पर गठरी लिये हुए घमयती के यहा पहुँचा। उमा द्वारपाल से बदा कि माइ मुझे महाराज के दर्शन करने हैं। अगर तुम बरा दो तो बड़ी एपा दो। इस युवापे में जिन्दगी का क्या भरोसा है ? न जाने कब सास निश्चय जाय। इसलिये मेरी प्रयत्न इच्छा है कि मैं मरने से पहले एक बार महाराज के दर्शन कर लू। फिर मर भी गया ता कोई रिता की बात नहीं। द्वारपाल न जाकर महाराज से विवेदन किया। किन्तु उस समय स्नान का समय था इसलिये महाराज न बूटे को बुलाकर कहा कि यदि तुझे मेरा रूप ही देवता है तो फिर राजसभा में आकर देवता। अभी तो मुझे स्नातादि से नियतना है। बूदा उहें देखकर बदा प्रमत्त हुआ। राज सभा के समय उसको फिर याद किया गया। लेकिन इस समय घमयती को अहंकार आ चुका था। जय उहोंने बूटे से पूछा कि कदो रूप कैसा है ? तब बूटे न सिर घुनाकर कदा-महाराज शरीर में तो कीड़े पड़ गये हैं। घमयती को शरीर की इस नश्वरता से वैराग्य हो गया। और वे राज्य छोड़कर साधु बन गये। कुछ दिनों बाद बड़ी देव वैद्य का रूप बनाकर आया और दवा ली दवा, यह कहते हुए मुनि के पास से निकला महाराज ने पूछा—भाई, तुम अपनी दवा से कौनसा रोग मिटाते हो ? क्या जन्म मरण का रोग भी मिटाते हो ? देव

कहा—नहीं महाराज मैं तो शरीर के रोग मिटाता हूँ। जन्म मरण रोग मिटाना मेरी शक्ति से परे है। महाराज ने कहा—अरे, इसमें क्या है ? शरीर का रोग तो जरा सा धूँस लगाने से ही मिटाया जा सकता है। ऐसा कहकर मुनि ने धूँस फी पक । अगुली अपने शरीर पर लगाई और देव से पूछा—कहो अब रोग कहाँ है ? देव मुनि के अलौकिक तपोबल को देख कर चकित हो गया और ताम्बकार करके चला गया। मुनि के तपोबल ने देवता को भी लज्जित कर दिया। इसलिये देव और ऋषि को समान कहा है।

३ मूर्ख और तिर्यक समान हैं। क्योंकि विवेक में शून्य होने के कारण मूर्ख भी पशु के तुल्य है। घट आकारमान से ही मनुष्य है। गीति में कहा है कि—ज्ञानेन हीना पशुभिः समाना अर्थात् ज्ञान-हीन मनुष्य पशु के समान है। इसलिये मूर्ख और पशु समान बह गये हैं।

४ मृत और दरिद्र समान है। क्योंकि जीता हुआ भी साधन हीन होने से दरिद्र कुछ नहीं कर पाता है। जिन्दा भी मरे हुए के समान होता है। इसलिये मृत और दरिद्र को समान बह गये हैं।

धर्म की सर्व श्रेष्ठता दिखाते हैं—

सध्या कला धम्मकला जिणाइ,
सया कहा धम्म-कहा जिणाइ।
सध्व यल धम्म यल जिणाइ,
सव्य सुद्ध धम्म सुद्ध जिणाइ । १६।

छायाजुषाद

ज्यों समी कला में धर्म कला विजयी है ।
 त्यों समी कथा में धर्म कथा विजयी है ।
 सब बल का जीते एक धर्म बल सथा ।
 सब सुख में सुख है एक धर्म का सथा । १६

शब्दार्थ—सव्याकला—सब कलाओं को (धम्मकला) धर्म
 कला (जिणार) जात लगी है । सव्याकहा—समी कथाओं में
 (धम्म कहा जिणार) धर्मकथा जयय त है । अन्य बल-समी
 भौतिक बल को (धम्मबल) धर्म बल जीतता है । धम्मसुद्ध-
 धर्म से हान पाता सुख (स य सुद्ध निणार) सब भौतिक
 सुखों को जीतता है ।

भावार्थ—ससार की सभी कलाएँ धर्म कला के सामने
 नगण्य हैं । ससार की सभी कथाओं में धर्मकथा प्रधान है ।
 ससार के भौतिक बलों पर धर्म बल विजय पाता है । धर्म से
 होने वाला आरिभक्त सुख के सामने अन्य पौद्गलिक सुख
 सुच्छ है ।

विवेचन-१ कला-धर्मकला सब कलाओं का जीता वाली है ।
 ससार की ७२ कलाएँ धर्मकला के बिना निस्सार हैं । क्योंकि
 सब कलाओं का जानकार भा धर्मकला के बिना ससार से
 पार नहीं हो पाता । कहा भी है—

सकलाऽपि कला कलायता, विकलाधर्म कला बिना छलु ।
 सकले नयन धृथा यथा तनुभाजा दि कनीनिफा बिना ।
 इसलिये कहा है कि—

कला बोद्धतर पुरुष की, जिणमें दो सरदार ।
 एक जीव आजीवका, एक जीव उदार ।

२ कथा—श्री-कथा भक्त-कथा, राज-कथा और देश-कथा य ससार में चार कथाएँ प्रसिद्ध हैं। धर्म-कथा उन सब कथाओं को जीतने वाली है।

३ बल-धर्म बल सब बलों में उत्तम है। ससार के धनबल जनबल और राज्यबल जहाँ बेकार होते हैं वहाँ धर्मबल समर्थ रहता है। नीति भी कहती है कि—

धन जने शत्रु जलाग्नि मध्ये,
महासमुद्रे पर्वत मस्तके वा ।
सुप्त प्रमत्त विपर्यस्तित वा
रक्षति पुण्यानि पुराष्टतानि ।

अर्थात्—धन में या लोगों में, शत्रु जल तथा अग्नि में, महासमुद्र या पर्वत के शिखर पर मोये हुए, प्रमत्त बने हुए या विपर्यस्त स्थान पर रहे हुए प्राणी की पूज्य-म के पुण्य ही रक्षा करते हैं। इसलिये सब बलों में धर्मबल ही श्रेष्ठ है।

४ सुख—ससार के सब सुखों को धर्म सुख जीतता है। क्योंकि ससार के सुख पौद्गलिक होने से नाशवान हैं, और धर्म का सुख आत्मिक होने से अविनाशी है। जैसा कि कहा है—सुहाइ सतोस साराइ 'स-तोप सुखों का सार है, जो धर्मरूप है। इसलिये कहा है कि सब सुखों में धर्म सुख बड़ा है।

सप्त व्यसनों से होन वाले दुष्परिणाम को अब दो गाथाओं में बताते हैं—

जूप पसत्तस्त घणम्म नासो,
मसे पसत्तस्त दयाए नासो ।

मञ्जे पमत्तस्स जसस्स नामो,
वेस्सा पसत्तस्स कुलस्स नामो ॥१७॥

छायाशुवाद

जूझारी अपना द्रव्य सभी खाता है ।
जा मांसभक्षी यह दया विमुक्त होता है ।
मदिरा प्रेमी अपना यश छो देता है ।
वैश्यागामी का यश नाश होता है ॥१७॥

शुद्धार्थ—जूए पमत्तस्स-जूए के व्यसनी को (घणस्स) घन का (नासो) नाश होता है । मजे पसत्तस्स—मांस भक्षण करने वाले की (दयाए नासो) दया का नाश होता है । मञ्जे पसत्तस्स-मद्य के नशे में आसक्त रहने वाले के (जसस्सनासो) यश का नाश होता है । वेस्सापसत्तस्स—वेश्या-लम्पट के (कुलस्सनासो) कुल का नाश होता है ।

भाषार्थ—जूए के व्यसनी का घन नष्ट होता है । मांस भक्षी का हृदय में दया नहीं रहती है । मद्य के नशे में आसक्त रहने वाले का यश नष्ट हो जाता है । तथा वेश्यागामी के कुल का नाश होता है ।

विशेषण—धार्मिक पुरुष व्यसनों से दूर रहते हैं । इसलिये यहा व्यसनों से होने वाला दुष्परिणाम दिखाते हैं—

१ शत—जूआ योजन से घन का नाश होता है । दुनिया के लोगों की सदा यह इच्छा रहती है कि किसी तरह घन सचय किया जाय । धनी हो या गरीब दोनों ही इसके लिये उद्यत रहते हैं । जब उनको यह मालूम होता है कि बिना

व्योग घाघे के ही अमुक व्यक्ति ने खेल ही खेल में हजारों रुपये कमा लिये, तो उनकी लालसा और भी प्रयत्न हो जाती है। वे भी उस खेल में जिसको जूआ कहते हैं, याजी मारने लगते हैं। जूआ में यदि कभी बाजी जीत गये तब तो इच्छा होती है कि दूसरी बार फिर और लगातें। अगर हार गये तो इच्छा होती है कि छोड़े हुए स्वयं तो प्राप्त करतें। अथवा लोगों को क्या मुँह दिखायेंगे ? इस प्रकार दोनों हालत में जूआरी को उस फन्द से फिर निफतना फँडन हो जाता है। आज भी आप सह चालों से इसका पूरा अनुभव ले सकते हैं। सँकड़ों को बरबाद होते देख कर भी लोग इसमें फसे जा रहे हैं। उनको यदि रचना चाहिये कि पूर्ण समय में धमगन युधिष्ठिर और राजा मल जैसे भूपति इसी जूप में अपना राज्य खो बैठे थे। आज भी इस जूपके कारण अनेकों धीमती को अपने प्राण त्यागने पड़े हैं। वास्तव में यह तपती और कीर्ति दोनों का नाश करने वाला है।

२ मास—मास भक्षण करना बाले की दया नष्ट हो जाती है। क्योंकि प्राणियों की हिंसा के बिना मांस की प्राप्ति नहीं होती, और हिंसा परम में दया बुद्धि नहीं रहती। जैसा कि स्मृतिकार ने कहा है—

ना कृत्वा प्राणिनां हिंसा, मासमुत्पद्यते परचित् ।

१ च प्राणिवधः स्वर्ग्य-स्तस्मात्मासं विवर्जयेत् । १

प्राणिवध के बिना मास की उत्पत्ति नही होती है। प्राणिवध विद्वय काय है, इसलिये मास का त्याग करना चाहिये। देखिये और भी कहते हैं—

न ब्राह्मनि न देयानि, पड धस्तूनीड पडितै ।
अग्निमधु विष शस्त्र, मद्य मास तयैष च ।

अर्थात्—विद्वानों को ससार में छुड़ धस्तुओं का दान और
अदण नहीं करना चाहिये । जैसे—१ अग्नि, २ मधु, ३ विष,
४ शस्त्र, ५ मद्य और ६ मास ।

३ मद्य—मद्यपान करने वाले के यश का नाश होता है ।
क्योंकि मद्य बुद्धि का नाश करता है । जिसकी बुद्धि मलिन हो
उसको मला कीर्ति कैसे मिल सकती है ? इसलिये कहा है कि
मद्य-शराब कीर्ति का नाश करता है ।

४—वश्यागामी का कुल नष्ट होता है । क्योंकि वेश्यावृत्ति
वाले का चित्त सदा अपने घर से विरक्त रहता है । उसका
प्रेम अपनी विवाहिता स्त्री के साथ नहीं होता । इसलिये कुल
वृद्धि में कारणभूत सतान की प्राप्ति भी नहीं होती है । इस
प्रकार यश नाश ही नहीं वेश्यागामी के तन और धन का भी
नाश होता है । जगत में उसकी अकीर्ति फैलती है । इसलिये
समझदार को वेश्यागमन नहीं करना चाहिये ।

हिंसा-पलत्तस्स सुधम्मनासो,
चोरी-पलत्तस्स सरीरनासो ।
तदा परत्थीसु पलत्तयस्स,
सब्बस्स नासो अइमा गई य ।

छायावुवाद

हिंसा करने से धर्मनाश होता है ।
चोरी करने से तन सब घटता है ।

परदारा गामी तन धन सब खोता है।
 कुल धर्म छोड़ गति नीच प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—दिसापसत्तम्—दिसा करने वाले के (सुधर्म-नासो) सुधर्म का नाश होता है। चोरीपसत्तम्—चोरी करने वाले का (शरीरनामो) शरीर नाश होता है। तदा-यैस्ते (परयोषु) पर स्त्री में आसक्त रहने वाले का (सन्वस्सनासो)-सब कुछ नाश हो जाता है और वे नीच गति का प्राप्त होते हैं।

विषेधन—इस गाथा में शिकार करना, चोरी करना और पर स्त्री गमन करना आदि दुर्मयसनों का कट्ट फल बताया गया है।

५—शिकार करने वाला दिसा की रसिकता से दया रूप सधर्म का नाश करता है। इसलिये कहा है कि दिसा रसिक मनुष्य के धर्म का नाश होता है। धर्म के नाश होने पर सुगति का नाश तो अयश्यम्भायी है ही।

६—चोरी करने वाला इधर उधर जगलों में घचाव के लिये फिरता रहता है। चोर किसा निपत स्थान पर सुख स नहीं रह पाता। उसको भूख, प्यास और सर्दी-गर्मी के विविध कष्ट भी सहने पड़ते हैं। अगर कहीं भद्र म्युल गया सा तन धन और कानि से भी उसे हाथ धारा पड़ता है। जेलों की कठिन यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। इसलिये कहा है कि चोरी करने वाले के शरीर का नाश होता है।

७—परस्त्री गमन साम्ना व्यसन है। इसके कारण पदे २

पुत्र्य भा पत्न्याद हो चुके हैं । आज भी ऐसे अनेकों उदाहरण
 देवन में आते हैं, जिन्होंने पर स्त्री में आसक्त बन कर अपने
 राज्य तक को छो दिया । प्राचीन समय का उदाहरण है कि
 पश्चोत्तर राजा अपने अन्तपुर में अनेकों रानियों के होने
 हुए भी सतुष्ट नहीं हुआ । यह द्रौपदी की सुन्दरता सुनकर
 उस पर मुग्ध बन गया, और देव शक्ति से द्रौपदी को अणु
 महता में मगया ली । परियाम यह हुआ कि द्रौपदी की छोड़
 करते हुए धीरुष्ण पाण्डवों को साथ लिए हुए पदा भा पहुँचे
 उन्होंने पश्चोत्तर से यह कहला भेजा कि या तो युद्ध के लिए
 तैयार हो जाओ या द्रौपदी को हमारे सुपुत्र करो । पश्चोत्तर
 अपनी शक्ति के अमिमान से उनके साथ युद्ध करना श्रु
 किया । कुछ ही समय में उसने पाण्डवों को परास्त कर दिया
 तब धीरुष्ण स्वयं युद्ध भूमि में पहुँचे । उनके धनुष बड़ा
 ही सेना तितर पितर होने लगी और स्वयं पश्चोत्तर राजा
 नगर में छिप गया । जब धृष्ण ने भूमि पर जोर से पाथ गिरा
 तो उसके आघात से नगरी के कोट बागरे गिरने लगे ।
 पश्चोत्तर ने समझ लिया कि अब कोई गति नहीं है । तब
 ही वह द्रौपदी के चरणों में जाकर गिरा और क्षमा माँ
 लगा । महासती ने भी दया युद्धि से उसे सात्वना दी
 कहा कि अब भी तुम अपनी रानियों सहित धीरुष्ण
 चरणों में अपना सिर मुका दो । मधु शरणागत के पालक
 अत निश्चय ही तुम्हें क्षमा कर देंगे । पश्चोत्तर ने सती
 आदेशानुसार धीरुष्ण के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी ।
 धृष्ण ने उसे क्षमा कर दिया । किन्तु जब पदा के पासुदेव
 इसका पता लगा तब उसने पश्चोत्तर को राज्य से अलग
 दिया । इसलिये कहा है कि पर स्त्री में आसक्त पुत्र्य

सर्वनाश होता है। यह मरकर भी दुर्गति को प्राप्त होता है। यहाँ सप्त व्यसनों से हीन घाली प्रमुख हानियाँ ही बताई हैं। इसी तरह श्रेय भी बुद्धिमानों की समझ लेनी चाहिये। प्रत्येक व्यसन इस लोक की तरह परलोक में भी दुर्गति का कारण बनता है। अतः व्यसन भाग्य से बचे रहना ही दित का कारण है।

किसको क्या कठिन है—

दाणं दरिद्रस्त पदुस्त सती,
इच्छा निरोद्धा य सुदोश्यस्त।
तादृण्य इन्द्रिय-निगडा य,
चत्तारि एवाह (णि) सुदुक्कराणि ॥२६॥

छायातुवाद

देना दरिद्र का दान महा दुष्कर है।
सामर्थ्य शाल को शान्ति भाव दुष्कर है।
वैभवशाली का इच्छा-सयम दुष्कर।
पौषन में करना इन्द्रियवश अति दुष्कर

शब्दाय—दरिद्रस्त—दरिद्र को (दाणं) दान देना (पदुस्त) समर्थ पुरुष को (क्षति) क्षमा रखना (य) और (सुदोश्यस्त) सुखयोग्य सामग्री वाले को (इच्छानिरोद्धो) इच्छा का निरोध करना और (तादृण्य) युवावस्था में (इन्द्रिय निगदो) इन्द्रियों का सयम रखना (एवाह) ये (चत्तारि) चारों (सुदुक्कराणि) अत्यन्त कठिन हैं।

भावार्थ—दरिद्र को दान देना, समर्थ पुरुष को क्षमा रखना,

सुख योग्य सामग्री सम्पन्न पुरुष को इच्छा-निरोध करना और युवावस्था में इन्द्रिय दमन करना अथ त कठिन है।

विवेक—व्यसनों का त्यागी दो दान आदि धार्मिक अंगों का पालन करता है। इसलिये यदा हीन अंग किसको कर्मि है ? यह बताते हैं।

१ दान—दरिद्र का दान करना कठिन है। जाचों की संपत्ति याता यदि दारों का दान करदे तो यह कठिन नहीं है। परन्तु जो मजदूरी करके अपना नियाह करता है, यह अपनी बोटी में से दूसरों का दान कर यह कठिन है। शास्त्र में कहा है—

‘तदा रूप समग्र या जाय पट्टिलामेमाणे किं चयति ? जीविय चयद, दुश्चय चयति, दुष्कर करति’ मगयती श० ७। तथा प्रकार के धर्म का यावत् दान करता हुआ क्या छोड़ना है ?

उ०—‘गौतम ! वह जीव का आधार को त्यागता है, कठिन त्याग करता है और दुष्कर करता है।’ पुराणों में कहा गया है कि युधिष्ठिर ने विभ्रजित यज्ञ करके करोड़ों का धन दिया और सब की आशा पूर्ण की। फिर भी उनकी यज्ञशाला में नखले का शरीर सोने का नहीं हुआ। जबकि एक सेठ ने अपने जीव का परयाह न करके दिये हुए मतीरे के जूठन में उसका मुँह सोने का हो गया। इसका कारण है अहंकार रहित दरिद्रावस्था का दान।

२ क्षमा—समर्थ पुरुष को क्षमा रखना कठिन है। जिसका राज्य और समाज में मान है, तथा जो धीपति है उसको किसी के अपमान करने पर सहन कर लेना कितना कठिन है, उतना जाचों का दान करना नहीं।

इच्छा निरोध—सामग्री सम्पन्न पुढ्य के लिये इच्छा का निरोध करना कठिन है। जो साधन रहित होने से इच्छा का निरोध करे, उसमें क्या विशेषता है ? विशेषता तो जब होती है कि सामग्री सम्पन्न होने पर भी अपनी इच्छाओं को रोके। शास्त्र में कहा है कि—

जे य कते विप्र भोष, लक्ष्णे विविष्टि बुध्यर्ह ।
साक्षीये वयह भोष, सेहु चारत्ति बुध्यर्ह ।

अर्थात्—जो कात्त और प्रिय भोगों के मिलने पर पीठ करता है और स्वाधीन भोगों को छोड़ता है यही सच्चा त्यागी है। सामग्री के अभाव में भोगों से दूर रहना त्याग नहीं, विवशता है। जैसा कि तुलसीदासजी ने उपहाम करते हुए कहा है—

गारि मरी गृह सम्पत्तिनामी ।
मूढ मुढाय मये सन्यासी ।
तं सज्जन सग पाव पूजावदि ।
उमय लोक निज द्वाध नसावदि ।

वास्तव में सामग्री सम्पन्न पुढ्य का इच्छा दमन करना कठिन है।

४—इन्द्रिय निग्रह—जवानी में इन्द्रियों को यश में करना अत्यन्त कठिन है। जब इन्द्रिय बल लीण हो जाने पर भी वृद्धावस्था में पुढ्यों को काम भाग छोड़न कठिन लगने हैं, नव भर घोषन में इन्द्रियों का यश में कर लगा जितना कठिन है ?
५। सहज ही अनुमान हो सकता है। इस प्रकार इन्द्रि

को दान, समर्थ को दामा, साधन, सम्पत्ति को इच्छानिरोध और अज्ञानी में इच्छियों को घश करना ये चार काम ब्रह्मन्त कठिन बजाये गये हैं। परन्तु ज्ञान और भक्ति का यत्न जिनमें होता है वे इन कठिन कार्यों को भी सरल कर दिखाने हैं। सगम गमले का गरीबी में दान और समर्थ महावीर की क्षमता इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। महावीर के कानों में ग्वाले कीलें ठोकरी थी परन्तु प्रभु ने समर्थ होकर भी उसको सहन किया। वे कमजोर नहीं थे, लेकिन उन्हें ज्ञान का पालन करना था। यह है ज्ञान का आदेश। शान्तिभद्र ने सामग्री सम्पत्ति होने पर भी अपना इच्छा का निरोध किया था। उ होंने अपना सम्पत्ति और ३२ स्त्रियों का मोह छोड़ दिया। जो, भागियों बड़े समझे जाते थे वे त्यागियों में घड़े त्यागी और योगियों बड़े योगी बन गये। ऐस हा जम्बू कुमार ने भी यौवन घय ८ स्त्रियों को त्याग कर समय स्वीकार किया था। विवाह होकर भी उ होंने भोग मार्ग में प्रवेश नहीं किया था। इस अनुपम प्रकृति से आकर्षित हो उनके साथ ५-७ जना ने समय स्वीकार किया था।

अब उपमहार में धर्म का उपदेश करते हैं—

असासय जीवियमाहु लोए,
धम्म चरे साहु जिणोवइद्ध ।
धम्मो य ताण सरण गइ य
धम्म निसेवित्त सुह लढति ॥२०॥

छायाजुवाद

ज्ञानी ने जग जीवन चञ्चल बतलाया ।
जिनराज कथित सद्धम करो जतलाया ।

है, धर्म शरण्य अरु रम्य शुभगतिदाता ।

जो कहे धर्म-का सेवा वह सुखपाता ॥२०॥

शुद्धार्थ—ज्ञानीपुरुष (लोप) संसार में (जीविय अर्थात्सर्व) जीवन को आशाश्रित (आहु) कहते हैं। इसलिये (साहु विणो घाट्ट) स त पुरुषों से कहे हुए (धम्म) धर्म का (उरे) आवरण करो। क्योंकि (धम्मोय) धर्म ही (नण मण्य) प्राण रक्षक (य) और (गइ) शाश्वत गति का कारण है। (धम्म निसेवित्तु)-धर्म को सेवन करके जीव (सुइ) सुख को (लदनि) प्राप्त करते हैं।

भाषार्थ—ज्ञानीजन इस संसार में जीवन का अस्थिर कहते हैं। इसलिये स त पुरुषों से कहे हुए धर्म का आवरण करना चाहिये। क्योंकि धर्म ही मनुष्य का रक्षक और अविचल गति का कारण है। धर्म को सेवन करके जीव सच्चे सुख को प्राप्त करता है।

विशेषण—जीवन की अस्थिरता और धर्म की महिमा समझे बिना कठिन साधना में प्रवेश नहीं होता। इसलिये यहाँ जीवन की चंचलता दिखा कर धर्म का उपदेश करने हैं।

ज्ञानियों ने कहा है कि संसार में मनुष्य का जीवन अस्थिर है। अज्ञानि के जल की तरह मनुष्य का जीवन बूढ़ २ होकर घटता रहता है। जैसा कि कहा है—

चला लक्ष्मी घना प्राणा, चले जीवितयौवने ।

बलाबलेति संसारे, धर्म एक सुनिश्चयः ।

अर्थात्—लक्ष्मी और प्राण चलते हैं। जीवन और यौवन

भी घबल है । ऐसे अस्थिर संसार में एक धर्म ही निश्चल संसार के दृश्यमान सभी पदार्थ अस्थिर और नाशवान् एक धर्म ही अविनाशी है । कहावत प्रसिद्ध है—

गढ़ रहे न गढ़पति रहे, रहे न सकल जहान ।
दोय रहे 'नृप मान' कहे, नेकी बंदी निदान ।

इसलिये जीवन को चञ्चल समझ कर वीतराग सत्य धर्म का आचरण करना चाहिये । क्योंकि एक शरण की तरह धर्म ही मनुष्य की रक्षा करने वाला है । अशरण और सद्गति का कारण है । धर्म के सामने सब पदार्थ अकिञ्चित्कार हैं । शास्त्र में कहा है—

किं पुत्तेहिं पियादिं च, अत्येण च पिंडिपण बहुपण
जो मरण—देस—काले, ए होर आलयण किं

अर्थात्—पुत्र और प्रिय स्त्रियों से क्या ? तथा अति किये हुए धन से भी क्या प्रयोजन ? जो कि मृत्यु के कुछ नहीं कर सकते । धर्म की महिमा शास्त्र ने कइ बतारि है । संक्षेप में यह इस प्रकार है—

धम्मो मंगल मुक्किट्ट, अहिंसा सज्जमो तथो
देवाधि तं नमसति, जस्स धम्मो सयामणो

अर्थात्—अहिंसा, सयम और नए रूप धर्म संसार में मंगल है । ऐसे धर्म में जिसका सदा मन लगा रहता है देवता भी नमस्कार करते हैं । फिर राजा महाराजाओं का भी धर्म ही क्या ? इसलिये धर्म का आचरण करना ही नीति में भी कहा है—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वत ।
नित्य सन्नद्धितो मृत्युः, कर्तव्यो धर्मसम्पदः ।

अर्थात्—शरीर अनित्य है । धन वैभव भी अस्थिर है ।
काल सदा समीप में घूमता रहता है । इसलिये मनुष्य को धर्म
सम्पद करना चाहिये । और भी कहा है—

धर्मं शर्म परत्र चेद्वच्च नृणा धर्मोऽघकारे रविः ॥ १ ॥
सर्वापत्-प्रशम-क्षमः सुमनसा धर्माभिधानो निधिः ।
धर्मो बधु रघवे धृतिपये, धर्मो सुहृद्विद्यस्य
ससारोऽमरस्थले सुरतर नास्त्येष धर्मात्पर ॥ २ ॥

अर्थात्—धर्म मनुष्यों के लिये इस लोक और परलोक में
सुख का कारण है । धर्म ही अघकार में सूर्य के समान और
सभी आपत्तियों को नाश करने में समर्थ निधि है । सज्जनों
के लिये बधु रघु रहित परलोक मार्ग में धर्म रूप बधु ही सच्चे
मित्र का काम करता है । इसलिये ससार के विद्यालय मरुस्थल
में धर्म से यदकर और कोई कल्पवृक्ष नहीं है । इसलिये
शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिये सदा प्रमाद रहित होकर धर्म
का आराधन करना चाहिये । क्योंकि धर्म का सेवन करके ही
प्राणी सुख पाते हैं । धर्म के बिना शांति प्राप्त नहीं हो सकती ।
इसलिये कहा है कि जीवन को चलन समझ कर भगवान्
द्वारा कहे गये धर्म का आचरण करो । धर्म ही रक्षक है
और धर्म का सेवन करके ही मनुष्य शांति प्राप्त कर
सकते हैं ।

इति श्री पूर्वाचार्य विरचिते श्री गौतमकुलके
छायापुत्रो हि दीव्याख्याय
समाप्तिमगात् ।

आत्म-पाठ

नाण ख दसण चेष, चरित्त थ तषो तदा ।
धीरिय, उयओगोय, पय, जीवस्म लफ्छणम् ॥१॥

शब्दार्थ—ज्ञान, दर्शन और चारित्र तथा तप, धीर्य और उपयोग ये ६ जीव के लक्षण हैं। अर्थात् ज्ञान, दर्शन-विश्वास, चारित्र क्रिया, तप और इनकी शक्ति तथा पदार्थ के सामान्य विशेष धर्म का विचार रूप उपयोग है, उनको जीव समझता चाहिये। रग, रूप, रस, स्पर्श और लम्बाई चौड़ाई आदि दृश्य रूप जीव क नहीं हैं। ७ इन दृश्य रूपादिकों में जीव ही है। क्योंकि ये सब जड़ व शुण काय हैं। फिर—

आया उयओगमओ, यत्ता भोत्ता उ कम्म ओगेण ।

इस प्रकार यह आत्मा सक्षेप से उपयोगमय है, फिर भी जो पुण्य पाप का कर्ता और सुख दुःख का भोक्ता है, वह कर्म के सयोग से है, स्वाभाविक रूप से नहीं। इसलिये ऐसा निश्चय करो कि—

एगो मं सासओ अण्णा, नाण दसण सजुओ ।

सेसाये वाहिरा भावा सव्वे सओग लफ्छणा ॥२॥

शब्दार्थ—ज्ञान दर्शन सयुक्त मेरा आत्मा ही एक शाश्वत नित्य है। अन्य मित्र वस्तु पुत्रादि व धन-धान्य, जमीन आदि क्या शरीर भी मेरे से इतर है। ये सब मेरे बाह्य भाव सयोग लक्षण बाल हैं। अर्थात् धन दारा आदि पदार्थों में जो मेरा स्व स्वामीपन है वह सयोग से उत्पन्न हुआ है। अतएव नाशवान है। उनके साथ गाढ़ मोह करना ही बन्ध-

का कारण है। हमके उच्छेद के लिये अपनी आत्मा पर अनु-
शासन करना चाहिये। उसका उपाय इस तरह है—

पगोह नत्थि म कोइ, नाहमधस्व कस्सई ।
पथ अदीण मरणा अपाणमणुमासर ॥३॥

शब्दार्थ—मैं एक हूँ। दूसरा कोई पदार्थ मेरा नहीं है। मैं
भी किसी दूसरे पदार्थ का नहीं हूँ। इस प्रकार मां से
आत्मा का अनुशासन करो। क्योंकि शास्त्र ब्रह्मा है—

अप्या नई वेवरणी, अप्या मे कूट मामली ।
अप्या मे कामदुहाधेणु, अप्या म नदण थण ॥४॥

शब्दार्थ—यह आत्मा नरक की घेतरणी नदी है और मेरी
आत्मा ही कूट शास्त्रमाली-नारकीय वृत्रिम वृत्त है। यह आत्मा
कामदुहा धेनु है, और मेरी आत्मा ही नन्दन धन है। इसलिये
हैं मय जायों। यह ध्रुव सत्य है। क्योंकि—

अप्या कत्ता विवत्ताय, दुहाण थ सुहाण थ ।
अप्या मित्तं अमित्तं च, दुपट्ठिय सुपट्ठिमो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—असलियत में दुःख और सुख का कर्ता तथा
विवर्त्ता-च्छेदन करने वाला आत्मा ही है। दुष्प्रतिष्ठित आत्मा
शत्रु और सुभाग में स्थित आत्मा ही मित्र है। इसलिये—

घर म अप्या दतो, सजमेण सवेण थ ।
माह परहिं दग्मतो, यधयेहिं घहहिं थ ॥६॥

शब्दार्थ—मार पीट अथवा यघन आदि दूसरे पाह्य-
साधनों से अपना दमन न हो इसके लिये तप और संयम से

ही अपनी आत्मा का दमन करे।—यही उत्तम है। क्योंकि आत्म विजयी ही सबको जीतने वाला है—

एगव्या अजिण सत्तू कसाया इ दिपाणि य
त जिणिसु जहानाय, विहरामि अह मुणी ॥७॥

शब्दार्थ—नहीं जीता हुआ एक आत्मा ही शत्रु है और चार कषाय व पाच इन्द्रिया भी शत्रु है। उाको यानी चार कषाय, पाच इन्द्रिया और एक आत्मा इन दमों को जीतकर म इन्द्रानुसार 'यावपूर्व' विचरता हूँ। अर्थात्—इनको जीतने स ही प्राणा सुख पूर्वक विचरता है। उनके जीतने का उपाय बतात है—

एगे जिण जिया पत्र, पचजिण जियादस ।
दसहा उ जिणिसाण, सवसत्तू निणामह ॥८॥

शब्दार्थ—एक बहिरात्मा को जीतने पर चार कषाय जीते जाते हैं। इन पाच को जीत लेने पर १० जीन लिये जाते हैं। यानी पाच इन्द्रियाँ भी जीत ली जाती हैं। जिसने पूर्वोक्त दस शत्रुओं को जीत लिये, उसने सभी शत्रु जीत लिये।

आत्मा को अशुभ कर्म से बचाने के लिये प्रतिदिन ऐसा चिन्ता करना चाहिये—

जो पुंवरत्ता वर रत्तकाले सपिक्कण्ण अ पगमण्यरण ।

किं म कड, किं च म किञ्चसेल, किं सक्कण्णिज्ज न समापरामि ।

शब्दार्थ—पूषरात्रि और विजुञ्जी रात्रि के समय मनुष्य को अपने आपका मन से अच्छा तरह निरीक्षण करना चाहिये।

और बेकना चाहिये कि मैंने आत्महित का कौनसा कार्य किया है, और इस प्रकार का कौनसा कार्य मुझे करना बाकी है। कौनसा कार्य शक्य होते हुए भी मैं नहीं करता हूँ। और भी—

किं मे परो पासह किं च अन्या, किं वाह अलिथ न विवञ्जयामि ।
इशेवसम्मं अनुयासमाणे, अणायय नो पट्टियथ कुञ्जा ॥१०॥

शुभार्थ—दूसरे लोग मरे गुण या दुर्गुण क्या देखते हैं ? और मैं क्या देखता हूँ ? अथवा मेरी आत्मा में कौनसी श्रुति है जिसे मैं अभी तक नहीं छोड़ सका हूँ। इस प्रकार अच्छी तरह से अपने आपको देखकर भविष्य में दुर्गुणों का सेवन नहीं करना चाहिये।

अन्धेय पामे कद्द दुप्पउत्त, कापण पाया अद्दु माणसेण ।
तथेर धीरो पडिसाहरिज्जा, आरध्मओ विपमिवक्खलीण ॥

शुभार्थ—जहां मन बचा व काया से आत्मा को कुमार्ग में लगा देने, वहाँ पर बुद्धिमान को चाहिये कि जैसे जातिमान थोड़ा अपने लक्ष्मणान हुए पाय की समाल लेता है, उसी प्रकार वह भी अपने आप मन का समाल ल।

अस्सरित्ता ओग जिह दिअस्स, धिहमन्ना सुप्पुरिसस्स णिच ।
तमाहु लोप पट्टियुद्धजीवी, सो जीयह सज्जम जीविएण ॥१२॥

शुभार्थ—जिनेन्द्रिय और धैर्य मध्यम जिन सुत्पुत्र्य के सदा ऐसे योग रहते हैं उसको इस लोक में प्रतिबुद्ध जीवी कहते हैं। यह सबकी जीवा व्यतीत करता है। उपदेश और फल—

आपा अलु समय रक्खिअरयो, सञ्चिदिपदिं सुत्तममादिपदिं ।
अरक्खिअ नाएपद उधेह, सुरक्खिअओ सम्बुद्धाण मुचर

शब्दार्थ—इसलिये शुभ समाधि युक्त सब इन्द्रियों के द्वारा आत्मा की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि अरक्षित आत्मा जातिवध-जन्ममरण के मार्ग में जाता है और अच्छी तरह कुमाग से रक्षित आत्मा सब दुर्गों से मुक्त हो जाता है। इसलिये कहा है—

अप्या चेव दमय घो, अप्या ह्यु खलु दुदमो ।

अप्या दतो सुही दोइ, अहिस लोप परत्य य ॥१५॥

शब्दार्थ—कुमागगामी आत्मा ही दमन करना योग्य है। क्योंकि आत्मा विध्य से दुदम्य है। जिम्हा दमका दमन कर लिया वह आत्मा इस लोक और परलोक में सुखी होता है। अतएव भगवान् कहते हैं कि समय और तप से आत्मा का दमन करो ता शान्ति प्राप्त करोगे।

—इति आत्मभावनाऽध्यायः ।

धारह—भावना

(अनुभाषक—श्री० पूनमचन्द्र कुन्दनमल त्रैलोक्यमदनगर)

आयक को चाहिये कि यह प्रातः काल एकांत स्थान में बैठ कर पवित्र चित्त से अनुपूर्वी का ध्यान करे और मनको एकाग्र करके नीचे लिखी हुई धारह भावनाओं का मान करे।

१ अनित्य भावना—

हे जीव ! तू नजर फैलाकर देख कि तरे आसपास जितने भी पदार्थ दिखते हैं, उनमें और तेरे में क्या भेद है ? जरा विचार करने से तुझे मालूम होगा कि हर एक पदार्थ जैसे धन, धूलित कुटुम्ब परिवार इतना ही नहीं बल्कि तेरा शरीर भी पानी के परपोटे के समान विनाश शील है। उसका नाश होगा ही। क्योंकि उनमें नैसर्गिक गन्धरता है। इन नश्यत पदार्थों के बीच एक आत्मा ही अविनाशी है जिसका नाश नहीं होना। इस लिए इन नाशयत्त वस्तुओं के मोह में न फसकर तू अपने आत्म स्वरूप को पहचान और इस क्षणिक सुख में आनन्द मत माग। भरत महाराज ने आरिसा भवन में अगुली से अगुठी के गिर-जाने पर इस 'अनित्य भावना' के अन्दर डुबकी लगाई थी और उसके फलस्वरूप सत्सार समुद्र से केवल ज्ञान रूप मोती को प्राप्त कर लिया था।

२ अशरण भावना—

हे जीव ! अगर तू अपने अविनाशी रूप को जाने के लिए कोशिश नहीं करेगा तो निश्चय समझना कि इन उपार्जन

दुर्यस्तुओं के नाश के कारण होन वाले वियोग से जो तुम्हें दुःख होगा उस दुःख में तुम्हें किसी तरह से भी विश्वास नहीं मिलेगा । जिस समय सब चीजों को छोड़ कर तू परलोक की ओर विदा हागा उस समय कोई भी पदार्थ तेरा शरणदाता नहीं होगा । आत्मा के नित्य स्वरूप को जानने वाला धर्म ही एक मात्र सहायक होगा । अगर तुम्हें शान्ति पाना है तो आत्म-स्वरूप को समझ कर धर्म की शरण में जा ।

इसी अशरण भावना के बल पर अनाथी मुनि न रोग की भयकर दशा में भी कुटुम्ब परिवार को सरक्षक नहीं मान कर धर्म ही का शरण लिया और परिणाम स्वरूप पूर्ण शान्ति के साथ ससार के सच्चे रक्षक व नाथ बन गये ।

३ ससार भावना—

श्री शालिभद्रजा को ३२ सु दरियों का अथ त पुर और अथ रिमित वैभव मिला । जिसको देख कर मगधदशाधिपति श्रेणिक भी चकित रह गया । किन्तु शालिभद्रजी जब यह जान लेते हैं कि मेरे ऊपर भी नाथ है, उस समय उनको दिव्य भोग और अपनी सुन्दर रमणिया भी नीरस मालूम होन लगी । वे समझने लगे कि ससार के सुख दुःख अपूर्ण और अनित्य हैं । त्याग ही सच्चे सुख का कारण है । इसी भावना से उन्होंने प्रतिदिन एक र स्त्री को छोड़ते हुए दाक्षित होन की प्रतिज्ञा की । लेकिन बीच ही में घन्नाजी से उनको वैराग्य में उत्तेजना मिली । जिससे वे साधु बने और आत्मा का वदपण किया ।

४ एकत्व भावना—

श्री नमीराजर्षि मिथिला के राजा और हजार स्त्रियों के पति

ये । जब उनके दाढ़ उबर की भयंकर जलन को शांत करने के लिए अनेक वैद्य व इकीम बुलाये गये तब उन्होंने बावना चन्दन को प्रस कर लेप करने का उपाय बताया । रानिया चन्दन को प्रसने बैठी तो उनके हाथों की चूड़ियों से एक साथ बड़े जोरों से झकार का शब्द निकलने लगा । चूड़ियों की यह ध्वनि नमिराज को असह्य मालूम हुई । उन्होंने मन्त्री को बुला कर कहा—'यह आवाज क्या से आ रही है ? मन्त्री ने राजा की बात समझ कर भक्त पुर में सूचना कराई । रानियों ने एक एक चूड़ी रख कर सब चूड़िया उतार दीं । जिससे आवाज बंद हो गई । नमिराज ने मन्त्री से फिर पूछा—मन्त्रीजी, आवाज बंद कैसे हुई ? पहले तो बड़े जोर का शब्द हो रहा था । अब यह बिलकुल बन्द कैसे है ?

मन्त्री ने चूड़ियों की बात कही । जिससे नमिराज के मन में विचार हुआ कि घर असल में राग द्वेष के भावना ये बाहरी वस्तुएँ ही अशांति का कारण होती हैं । यह जीव तो अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा । इस दुनिया में उसका कोई सहायक नहीं है । ऐसा समझ कर श्री नमिराजपि न भौतिक विज्ञान से दूर हो साधु पद को धारण किया और परिणाम में रोग-शोक रहित पूणानन्द की प्राप्ति की ।

४ अन्यत्र भावना—

सुग्रीव नगर के अधिपति राजा बलभद्र के प्रिय पुत्र मृगा-पुत्र न पुण्योदय ने प्राय सभी सांसारिक सुख प्राप्त किए थे । एक दिन मणिरत्न जटित महलों में अपनी मित्रियों के साथ रंग रास में बड़े रूप उठाने बीच मार्ग में चलते हुए शांत दान्त

मुनिगज को देना। मुनि परिचित से मालूम हो गये। इतना उनके मन में तरह २ के ऊदायोग पैदा हुए। अन्त में पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाने से उन्हें मालूम हुआ कि यह मुनि-पद ही आत्मसाधना का मार्ग है। आत्मा का सच्चा मित्र है। मैं जितना सुमा रदा हूँ वे धन, दारा, कुटुम्ब सब मेरे से मित्र हैं। आत्मनो शुद्ध युद्ध और निष्कलक है। इस विचार से मृगापुत्र सस्य को त्याग कर आत्मसाधन में लग गए और परमपद को प्राप्त कर गये।

अशुचि भावना—

धीरे चक्रवर्ती सनकुमार का रूप इतना सुन्दर था देवलोक से देव भी उसे देखा को आया और बूढ़े का रूप बन कर राज महल के द्वार पर पहुँचा। द्वारपाल से कहा—मैं यहाँ से ही महाराज के दर्शन करन के लिए अपने घर से निकला था आज किसी तरह इस हालत में यहाँ आ पहुँचा हूँ। क्या तुम महाराज के दर्शन करन के लिए आदर जानें दोगे ? द्वारपाल महाराज की आज्ञा से उसे आदर आने की स्वीकृति दे दी। स्नान घर में बड़े हुए चक्रवर्ती के अलङ्कार रहित शरीर देखकर यह ब्राह्मण मुग्ध हो गया। रूप के अद्भुत से चक्रवर्ती न उसको फिर राज सभा में आने को कहा। जब महाराज सजसज कर सिंहासन पर आ बैठे, तब यह ब्राह्मण भी आया और उसके रूप को देख कर अपना सिर हिलागे लगा। महाराज ने पूछी—क्या, क्या बात है ? जिससे तुम सिर हिला रहे हो ? बूढ़े ने कहा—महाराज ! आपकी देह में तो कीड़े पैदा हो रहे हैं। अगर आपको विश्वास न हो तो पीकदानो में धूक कर

श्रीशिवे मातृम हा जायगा । मन्नाराज न घैना ही बिया । कीड़े
 साक दिव्यार देन लागे । मय व विगारन लागे कि जिस देह की
 सुन्दता मन्मार में अनुपम थी, जिसकी आज तक अष्ट्रे अष्ट्र
 खा-पान व यखालहारों से मूष पाना पोना । उसम कीड़
 कैसे ? अहो घट हो सङ्ग गसत विष्वसन और अशुचि धर्म
 खाता है । मैंने अज्ञानघर हगरे पीछे आज तक किनन अर्थ-
 गापाउरगु किये हैं ? आत्मा के सम्म्यरूप की और तनिब भी
 नहीं दया । अब मेरा कर्त्तव्य है कि इस अशुचि शरीर से
 शुभिमून सयम की आराधना कर अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त
 करू । ऐसा विगार कर चदवर्ती मातृकुमार ने श्रीला धारण
 की और अनुपम लब्धियों को प्राप्त कर अत में परमपद की
 प्राप्ति की ।

७ आश्रय भावना—

पातित आश्रय ने अपने पुत्र समुद्रपाल का किसी रूपयती
 कन्या से विवाह कर दिया । वे एक समय अपना मङ्गल के भरोसे
 में बैठे हुए थे । उस समय यद्य म्याग में सेजाने हुए एक घोर
 को देखा । उसके शरीर पर काल घर्र थे । लोगों में उसकी
 निन्दा हो रही थी । उसे देख कर समुद्रपाल को विचार हुआ
 कि पापों का परिणाम कैसा भयकर है ? य हिंसा, भृङ्ग आदि
 आश्रय ही आत्मा को सत्कार में रुलात है । जब इस लोक में
 ऐसा भयकर दुःख होता है तो परलोक में क्या परिणाम होगा ?
 इन तरह पापों के कटुफल का विगार करते हुए समुद्रपाल
 प्रतिबोध पाकर सयमी बन गये और अत मसयम का आराधन
 करने हुए परम पद की प्राप्ति की ।

८ सघर भावना—

श्री केशीधमण और गौतम स्वामी ने परस्पर इन्द्रिय, कर्पाय व मनोनिग्रह आदि सघरों पर विचार किया और उसके लिए समुचित प्रवृत्ति को बुराग्रह नहीं करते हुए धारण की। अर्थात् केशीधमण ने ४ महाव्रत से ५ महाव्रत रूप धर्म को उचित समझ कर अपनाया। इस तरह विशुद्ध सघर भावना से दोनों महात्माओं ने अपने आत्म कल्याण की साधना सफल की।

९ निर्जरा भावना—

हर रोज ६ पुरुष और १ स्त्री मारने वाला अर्जुनमाली सुदर्शन धावक के सहयोग से भगवान महावीर को सेधा में पहुँचा। पापों का कट्ट फल सुन कर उसने भी साधुपन स्वीकार किया। तप के पारण्ये के लिए जब वे राजगृह में घूमने लगे तब कई लोगों ने उन्हें गालियाँ दीं और कई लोगों ने उन्हें मारा-पीटा भी। लेकिन मुनि अर्जुनमाली सोचते कि मेरा इ-हो-न अमी क्या बिगाड़ा ? मैंने तो इन लोगों को बहुत कष्ट दिया है। कई लोगों को जान से मारा है। ये तो मुझे केवल ऊपरी कष्ट ही दे रहे हैं। मेरे कर्मों की निर्जरा में कारण बन रहे हैं। अगर इन कष्टों को समभाव पूर्वक सहूंगा तो मेरी आत्मा तिमिल बन जायगी। इससे प्रतिभूल अगर विषम भाव लाऊ तो कष्ट के सिवाय कम-भार भी बढ़ जायगा। इस तरह दु-हो-में निर्जरा भावना करते हुए छह मास में ही मुनि अर्जुनमाली न वेदलघान प्राप्त कर आत्म कल्याण कर लिया।

१० लोक स्वरूप भावना—

शिव राजपि ने विभक्त ज्ञान से ७ द्वीप और ७ समुद्र तक ही लोक है ऐसा जाना, और वे उस मिथ्या ज्ञान का प्रसार करने लगे। जब गौतम स्वामी को यह मालूम हुआ तो उन्होंने भगवान् महावीर से पूछा—भगवन् ! क्या यह बात सच है ? भगवान् महावीर ने उत्तर में अमर्याद द्वीप और समुद्रों का होना परमाया। इसको सुनकर जाता शिवराज ऋषि के कथन का मिथ्या इह्य लगी। शिवराज ऋषि इसे सुनकर विचार करने लगे कि सत्य क्या है ? मरा ज्ञान कहा अमर्य तो नहीं है ? ऐसा सोचते हुए समयांतर में उनका यह विभक्त ज्ञान चला गया। तब वे सद्द निवारण के लिए भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। शिवराजपि ने अपने प्रश्न का योग्य उत्तर और उपदेश सुनकर भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण करनी। समय की अराधना के साथ लोक स्वरूप का विचार करते हुए उद्दान समय पर केवल ज्ञान की प्राप्ति की और सम्पूर्ण लाफलाक का मान कर, सच्ची शान्ति के अधिकारी बनें।

११ धर्म भावना—

श्री धर्मरुचि महाराज कटपे तुम्हें का विपैला आहार पाकर जब गुरु आज्ञा से डालने को गये, तब एक नूट म पड़ कर मंझों कीड़ियों का मरगा देखा। यह नग कर उड़ोने विचार किया कि जब एक नूट से इतने जीवों का मदार होना है तो सब इस डाल इन पर तो अर्थ हो जायगा। अमर्य जीवों की या ही दया हो जायगी। इसलिए अच्छा तो यह है कि दया

धर्म की आराधना के लिए मैं ही इसे पी जाऊँ । यह शरीर तो एक दिन जान ही घाला है । अगर यह धर्म के लिए काम आवे तो इससे बढ़कर और अधिक हो क्या ? यह विचार कर धर्म रुचि प्रीति न उस बढ़वे तुम्हें का आहार कर लिया । धर्म के भयकर परिणाम से हाथ-धाली प्रबल वेदों को उठाने समभाव पूर्वक सदा, और धर्मभाव में प्राणा त कर सर्वार्थसिद्धि के शा त सुख को प्राप्त किया ।

१२ बोधिबीज भावना—

भगवान् शृणुभद्रव वं हृद पुत्रो न ससार वं प्रायः सभी सुख पाये थे । लेकिन भगवान् वं वाञ्छित हो जाने पर समय पाकर वे भी दीक्षा लेने का तैयार हुए । उस समय उनके बड़े भाई भरत न राज्य आदि का आनन्द-प्रण कर रहे हुए उनसे बड़ा-बहुओं । अभी आप मिले हुए इन उत्तमोत्तम भोगों की भागिये और फिर समय लीजिये । इस पर वं बड़ा लगे-भाइ । ये ससारके भोग तो आत्मा को अन तयार मिले हैं । लेकिन इनसे आत्मा को कभी शान्ति नहीं मिला । फिर उनके मोह में फँसकर अपना अहित करना कदा तक उचित है ? हम तो अब अत्यन्त दुर्लभ इस बोधि-बीज-समकित रत्न की आराधना करेंगे । जिसकी एक बार की हुई आराधना ही ज म मरण के फेर को टाल सकता है । क्या शय भी हम उससे अवित रह जायें ? इस तरह अपन भाइ भरत वं समभा कर सब टांगु वने और समकित रूप बोधिभाधना से अपना वरपाण किया ।

प्रार्थना-संग्रह

(श्री अनन्त तपिन स्तुति)

अनन्त जिनेश्वर नित नमू, अद्भुत जोत अलेख ।
 ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख ॥अ०॥
 सूक्ष्मथी सूक्ष्म प्रभू, चिदाद् चिद्रूप ।
 पवन शब्द आकाश थी सूक्ष्म ज्ञान सरूप ॥अ०॥
 सकल पदार्थ चितवू, जे जे सूक्ष्म होय ।
 तिणथी तू सूक्ष्म महा, तो सम अर न कोय ॥अ०॥
 कवि पंडित कहि कहि यहे, आगम अर्थ विचार ।
 तो पण तुम अनुमय तिका, त सके रसना उच्चार ॥अ०॥
 थाप भणे मुन् सरस्वती, देवी थापो थाप ।
 कही न सक प्रभु तुम सत्ता, अलेख अज ग जाप ॥अ०॥
 मन बुध घाणी तो धिये पहुँचे नहीं रे लगार ।
 साधी लोकालोकनो, निर्विकल्प निर्विकार ॥अ०॥
 मा 'सुजसा' 'सिंहरथ' पिता, तस भुक्त अनन्त जिनद ।
 'विनयचद' अथ आलरयो, सादिय सहजानद ॥अ०॥

(श्री श्याम जिन स्तुति)

चेतन जाण कटपाण करन का, आन मितया अयसररे ।
 शास्त्र प्रमाण विद्वान प्रभु गुन, मन चंचल धिर कर रे ॥१॥
 श्री श्रेयाम जिनद सुमर रे ॥
 सास उसास विलास भजन को, दृढ विश्वास पकर रे ।
 अजपाऽभ्यास प्रकाश दिये बीच, सो सुमरन जिन घर रे ॥२॥
 कंदप बाध लोम मद् माया, प स्य ही परिहर रे ।
 सम्यक दृष्टि सहज मुख प्रगै गान नशा अनुमर रे ॥३॥

भ्रष्ट प्रपद्य जीवन तन धन अरु मज्जा मनेही घर रे ।
 छिन में छोड़ चले पर भय कैं, वध सुमाशुभ थिर रे ॥४॥
 मानुष जनम पदारथ जिगरी, आशा करत अमर रे ।
 त पूरब गुरुत करि पाया, धरम भरम दिल धर रे ॥५॥
 'विष्णुसैन' नृप 'विश्वनाशी' धी नदन नू न बिलर रे ।
 सहजै मिटे अज्ञान अविद्या, तो मुक्ति पथ पग भर रे ॥६॥
 नू अविचार विचार आ म गुन, भ्रम जजाल न पररे ।
 पुद्गल चाय मिटाय विषयउद नू जिग व न (नेन) अवररे
 धी येयाल सुमररे ॥७॥

श्री महावीर जिन-स्तवन

श्री महावीर नमा घराणी शासन जदगो जाणुरे प्राणी ।
 धन धन जनक सिद्धारथ राणा धन त्रिशुनाइ मात रे प्राणी १
 ल्याँ सुन जाणो गोद सिल्लाय', वधमान विष्णुना रे प्राणी ।
 प्रधवन साण विचार लिया में काळ अरथ प्रमाण रे प्राणी ॥२॥
 सूत्र विनय आचार तपस्या चार प्रकार समाध र प्राणी ।
 न करिय भय सागर नलिये आत्म भाव अरु धरे प्राणी ॥३॥
 ल्याँ काचन तिहु काल कहीजे मृगण नाम अनेक रे प्राणी ।
 ल्याँ जगजाय चराचर जोनी, हँ चेतन गुण एक रे प्राणी ॥४॥
 'अपनी आण त्रिप थिर आत्म साद हस कफाथरे प्राणी ।
 केवल प्रसन्न पदारथ परिचय, पुद्गल भरम मिटाय रे प्राणी ॥५॥
 शब्द रूप रस गंध न जामें नास परम तप छाहर प्राणी ।
 निमिर उद्योत प्रभा कहु भाहीं, आत्म अनुभव माडिरे प्राणी ॥६॥
 भुव दुख जीवन मरण अवस्था ए दस प्राणु समातरे प्राणी ।
 हणया विघ्न विन च द रदिये, 'या जल में जलजात रे प्राणी ॥७॥

-कविपर श्री त्रिगुण रजी ।

श्री अजित जिन-स्तवन

पथही निहाल रं बीजा जिनतणी रे अनित अजित गुणधाम ।
 जे तें जीत्यां रं ते मुक्त जीतियो रं, पुरुष किश्य मुक्त नाम ॥१॥
 चरम नयन करी मारग जोयता रे, भूल्यो मयल ससार ।
 जेणे नयन करी मारग जोइए रं, नयन ते दिव्य विचार ॥२॥
 पुरुष परपर अनुभव जोयता रे, अधाअधि पुलाय ।
 वस्तु विचारे रे जा आगमं करी रे चरण धरण नहों ठाय ॥३॥
 तर्क विचारे रे घाद परंपरा रे, पार न पदोच काय ।
 अमिमत वस्तु रे धम्नुगते कइ रे ते विरगा नग जोय ॥४॥
 धम्नु विचारे रे दि य नयन तणो रं, विरह पडयो निरधार ।
 तरतम जोगे रे तरतम घासना रे घालिन बोध आचार ॥५॥
 काल क्षिप्र लही पथ निहालगु रे प आशा अवलम्ब ।
 प जग जीये रं जिनजी जाणजो रे 'ज्ञान-दघन' मत अम्ब ॥६॥

श्री श्रेयाम-जिन-स्तवन

श्री श्रेयाम जिन अतरजामी, आतमरामी नामी रे,
 अध्यातम मत पूरण पामी, स्वज मुक्तिगति गामी रे । श्री श्रे० १॥
 सयल ससारी इन्द्रियरामी मुनिगुण आतमरामी रे
 मुख्यवखे जे ज्ञानमरामी, न कयल नि कामी रं । श्री श्रे० २ ॥
 निज स्वरूप ज किरिया साध, नेह अध्यातम लहिये रे
 जे किरिया करी चउर्गति साधे न त अध्यातम कहिये रे । श्री श्रे० ३॥
 नाम अध्यातम टरण अध्यातम ट य अध्यातम छुडो रे,
 भाव अध्यातम निज गुण साधे, नो नेहशु रथ मडो रे । श्री श्रे० ४॥
 शब्द अध्यातम अर्थ सुणी ने, निर्विकल्प आदरजो रे,
 शब्द अध्यातम भजता चाणी, दान प्रदण मनि धरजा रे । श्री श्रे० ५॥

अध्यातमी जे वस्तु विचारी, बीजा यथा लयासी रे,
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, 'आनदघन' मत वासी रे । श्री श्री० ६८

श्री वासुपूज्य-जिन-स्तवन

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे ।
निराकार सोकार सचेतन, करम करम फल कामी रे । १ ॥
निराकार अभेद सप्रादक, भेद प्रादक साकारो रे ।
दशन शाग दुभेद चेतना, वस्तु ग्रहण व्यापारो रे । २ ॥
कर्ता परिनामी परिणामो, कर्म के जीव करिये रे ।
एक अनेक रूप नयघादे, नियते नर अनुसरिये रे । ३ ॥
दुःख-सुख रूप कमफल जाणो, निश्चय एक आनदो रे ।
चेतनता परिणाम ग चूके, चेतन कहे जिनचदो रे । ४ ॥
परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान कर्मफल भाषी रे ।
ज्ञान कर्मफल चेतन कहिये, लजो तह, मनाथी रे । ५ ॥
आत्मज्ञानी भ्रमण कहाये, बीजा द्रव्यलिङ्गी रे ।
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, 'आनदघन' मत सगी रे । ६ ॥

श्री नमि-जिन-स्तवन

बहु दर्शन जिन-अग भणीजे, न्यास पढग जो साधे रे ।
नमि जिनघरना चरण उपासक, बहु-दर्शन आराधे रे । १ ॥
जिन सुर पादप पाय वखाणु, सारथ जोग दोष भेदे रे ।
आत्म-सत्ता विवरण करता लहो दुग अग असेदे रे । २ ॥
भेद अभेद सुगत मिमासक, जिनघर दोष कर मारी रे ।
लोकालोक अयलम्यन भजिये गुरुगमधी अधधारी रे । ३ ॥
लोकार्थति फूल जिनघरनी अश विचार जो बीजे रे ।
सत्य विचार जो बीजे रे, गुरु गम बिन किम पीजे रे । ४ ॥

जैन जिनेश्वर वर उत्तम अग अतरग दद्विरगेरे ।
 अक्षर याम धरा अराधक, आराधे धरी सगरे । ५ ॥
 जिनवरमा सघला दशन छे, दशने जिनवर भजना रे ।
 मागर भा सघली नाटनी सनी तटिनी मा मागर भजना रे । ६ ॥
 जिम स्वरूप यह जिन आराध ते मही जिनवर द्याये रे ।
 भृगा इतिहान घटावे व भृगी जग जोये रे । ७ ॥
 घूर्णि भाष्य सूत्र त्रियुक्ति, घृत्ति परम्परा अनुमय रे ।
 समय-पुरुपना अग कथा ए जे छुदने दुर्मय रे । ८ ॥
 मुद्रा धीज घारणा अक्षर, न्यास अर्थ विनियोगे रे ।
 जे रपात्र ते नवि घचीजे विषा अघउक भोगे रे । ९ ॥
 धृत अनुमार विगारी थोलू सुगुरु तथाविध न मिलेरे ।
 किरिया करी नवि साधि शकिय, ए विषवाद त्रिस्त सघले रे । १० ॥
 ते माटे उभो कर नाडी, जिनवर आगल कदिये रे ।
 समय धरण सेवा शुद्ध देजा जिम आराधन लदिये रे । ११ ॥

-श्रीमदागराधनजी म०

श्री पद्मप्रभु-जिन-स्तवन

श्री पद्मप्रभु जिन गुणनिधि रे लाल,
 जग सारक जगदीश रे घालेसर ।
 जिन उपकार थकी लहे रे लाल
 भविजन निधि जगेश रे घालेसर ॥१॥
 तुज दरिखण मुज पाइलो रे लाल,
 दरिखण शुद्ध पवित्र रे घालेसर ।
 दरिखण शब्द नये सरे रे लाल,
 सप्रद पद्मभूत रे घालेसर ॥२॥

- शीनें वृक्ष अननता रं लाल
 पसर भूजल योग रे घालेसर ।
 तिम मुज आतम सम्पदा रं लाल,
 प्रगटे प्रभु सयोग रे घालेसर ॥२॥
 जगत ज तु कारज रुचि रे लाल,
 सात्रे उदये भाण रे घालेसर ।
 चिदानन्द सुरिलासता रे लाल,
 बाधे जिनवर भाण रे घालेसर ॥३॥
 लुब्धि सिद्धि मत्राक्षरे रे लाल,
 उपने लावक सग रं घालेसर ।
 सहज अध्यातम तत्पता रं लाल,
 प्रगटे तत्की रग रे घालेसर ॥४॥
 लोह धातु कायन हृवे रे लाल
 पारम परसन पामी रे घालेसर ।
 प्रगटे अध्यातम दशारे लाल
 व्यक्त गुणी गुण ग्राम रे घालेसर ॥५॥
 आ मसिद्धि कारज मणी रे लाल
 महज नियामक हनु रं घालेसर ।
 तामादिक् जिनराजता रं लाल
 भद्रसागर माद सतु रं घालेसर ॥६॥
 स्तभन इन्द्रिय यागना रे लाल
 रत्न प्रण गुण राय रे घालेसर ।
 'देवच द' तुई स्तयो रे लाल
 आप अरण अकाय रं घालेसर ॥७॥

श्री गान्धि स्तवन

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति सब मिल गान्धि कहो ।
 घमसेन अचिरात् न न दन, सुमिरन है सब दुख निकदन ।
 अद्वारात्रि हा वदत सब मिल शान्ति कहो ॥ ॐ शान्ति० ॥
 भातर शान्ति बाहर शान्ति तुम में शान्ति मुझ में शान्ति ।
 मय में शान्ति बसाओ, सब मिल शान्ति कहो ॥२॥
 त्रिपय कषाय का दूर निवारो काम बाध से करो विचारो ।
 शान्ति साधना यो हा, सब मिल शान्ति कहो ॥३॥
 शान्ति नाम जो जपन भाइ मन विशुद्ध हिय धीरज भाई ।
 अतुलिक शान्ति उमे हो, सब मिल शान्ति कहो ॥४॥
 प्राण समय तो धर्म स्थान में, शान्ति पाठ करत मुदु स्वर में ।
 उनको दुख नहीं हा सब मिल शान्ति कहो ॥५॥
 शान्ति प्रभु सम समदत्ता हा, करें विद्वत्ति जो गति हो ।
 'गन मुनि' सदा विजय हा सब मिल शान्ति कहो ॥६॥

—पू० दम्नीमलनी म०

प्रार्थना—

दयामय देवी मति हा जाय ।
 त्रिभुवन का कल्याण कामता दित - यदना जाय ॥
 दयामय देवी मति हा जाय ॥
 प्राणों के दुख का दुख समझू सुख का करु उपाय ।
 अवन सब दुखों का सहलू पर दुख सहन न जाय ॥दया०॥
 भूल भटक उलटती मति के, जो हैं जो समुदाय ।
 उन्हें सुभाऊँ सन्ना स पथ तिथ सबस्य लगाय ॥दया०॥

सत्य धर्म हो सत्य कर्म हो सत्य ध्येय बन जाय ।
सत्याचेक्षण में ही 'प्रमी' जीवन यह लग जाय ॥दया॥

-श्री नाथूरामजी 'प्रमी'

श्री पार्व-जिन-स्तवन

श्यामाजी को प्यारो पारस पारस सो दुलारो रे ।
विश्वसेत कुल कमलदिवाकर नैन को उजियारो रे ॥१॥
सुजस प्रभु को तीर लोक में श्राय रह्यो धिमतारो रे ॥२॥
मोह करम पश मन्को भत्र = वाध्या पाप हजारो रे ॥३॥
सुम शरणे आयो नदां प्रभुपर तिणरो सोध दिचारो रे ॥४॥
पुण्य जोग सुँ हण भव माही रतन त्रितामणि पायो रे ॥५॥
हू जड मूरप फँक न देऊ, पारस कासरो थारो रे ॥६॥
द्वार खडा 'रतेश' वृषानिधि, सणजे मोहनगारो रे ॥७॥
तू कर्णानिधि सायब मारो, लीजे पार उतारो रे ॥श्यामाजी॥

—१० कु० रतेश P



स्वाध्याय-ग्रन्थ

स्वाध्याय प्रेमियों के लिये अब हम यहाँ कुछ इच्छित ग्रन्थों की सूची उपस्थित कर रहे हैं, जिसमें पाठकों के इच्छित ग्रन्थों के अनुसार स्वाध्याय ग्रन्थ चुनने में कोई बाधा नहीं होगी।

सार्वजनिक धारण योग्य पुस्तकें—

१	सेठ सुदर्शन	पूरा उपस्थित है
२	सेठ धरम	— " —
३	सती चन्दनबाला	— " —
४	सती राजेमती	— " —
५	सुभाषु कुमार	— " —
६	सनाथ अनाथ निर्णय	— " —
७	धायक का अहिंसा प्रथ	इस पुस्तक का अहिंसा प्रथम अंक उपस्थित है।
८	नमिराज	— " —
९	म० महावीर का आदर्श जीवन	इस पुस्तक का अहिंसा प्रथम अंक उपस्थित है।
१०	जम्भू कुमार	— " —
११	महावीर वाली	— " —
१२	आत्म प्रबोध	— " —
१३	आनन्द की पग टाँक	— " —
१४	सम महाप्रथ	— " —
१५	भायना शतक	— " —
१६	वर्षाव्य होमना	— " —

२७ सामायिक स्वरूप	श्री नागचन्द्रजी महाराज
२८ स्थानकवासी जैन इतिहास	श्री केशरीचन्द्रजी भट्टारी
२९ तार्थकर चारित्र्य १ भाग	श्री बालचन्द्रजी श्रीधीमाल
३० " " २ भाग	" " "
३१ सामायिक प्रतिप्रमाण सार्थ	

विशेष श्रेणी की पुस्तक—

१ निर्मम प्रयत्न (भाष्यसहित)	प्र० प० चौधमला महा०
२ ज्ञानार्णव (ध्यान सद्यधि)	श्री शुभचन्द्राचार्य
३ कारण सम्बन्ध	
४ छष्टिवाद और ईश्वर	शताग्रधानी प रत्नचन्द्रजी म
५ उत्तराध्यन (हिन्दी)	श्री सन्तबालजी
६ जैन तत्त्व प्रकाश	पूज्य शमोलक ऋषिजी म०
७ ध्यान कल्पतरु	'
८ उत्तराध्यन (हिन्दी)	उपाध्याय आत्मारामजी म०
९ दशाधन स्फुट	"
१० उपासक दशाक	श्री घासीलालजी महाराज
११ दशवैशालिक सूत्र	पूज्य हस्तीमलजी महाराज
१२ गन्दी सूत्र	'
१३ तत्त्वार्थ सूत्र	प० सुखदागजी "
१४ कर्मप्रव	
१५ आचाराग (हिन्दी)	श्री सन्तबालजी
१६ सूत्ररत्नाग सूत्र ४ भाग (सटीक)	प० जवाहरलालजी म
१७ स्याद्वादमञ्जरी (वानुवाद)	श्री जगदीशचन्द्र एम० प
१८ लोकाशाह मत समर्थन	श्री रतनलालजी डोम
१९ मुख्यद्विष्टिका सिद्धि	

पद्य—

विनयचन्द्र चौधीमी

स्तवन तरंगिणी

भा० १, २, ३,

मरी भावना

आनन्दघन पद सग्रह

शुक्ल रोमोपण

१, २, ३ भाग

सुश्रावक विनयचन्द्रजी

पूज्य माधव मुनिना

भी मुख्तारनी

क रे आनन्दघनजी

धी शुक्लचन्द्रजी महाराजः



— परिशिष्ट —

गौतम-कुलक से सम्बन्ध रखने वाली कुछ कहानियाँ हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। आशा है गवीन पाठकों को इससे कुछ लाभ ही पहुँचेगा।

—सम्पादक।

१—सागरदत्त सेठ

कई दिनों पहले की बात है। किसी गाँव में एक छोड़पति सेठ रहता था। उसका नाम था सागरदत्त। उसके चार लड़के थे। सेठ ने चारों लड़कों के विवाह कर दिये थे। पुत्र वधुओं के घर से भी बहुत धन-माल मिला था। लेकिन था सेठ पहले नम्बर का कजूस। विवाह हा जान पर उसने सोचा-अगर लड़के घंटे २ हा खाते रहेंगे तो एक न एक दिन मेरा खजाना गाली हो जायगा। यह सोचकर उसने अपने लड़कों को पुलाया और विदेश में धन कमाने के लिये जाने को कहा। लड़के अपने पिता के स्वभाव से परिवर्तित थे। अतः लाचार हो वे चुपचाप विदेश चले गये। उनके धले जाने पर घर सुनसान हो गया। सेठजी अकेले रह गये। पुत्रवधुए उच्च कुल की थी। पति की मौजूदगी में तो वे किसी तरह अपना मन बहला लेती थी, परन्तु अब उनका कोई सहारा नहीं रहा। सब तरह से उनको कठिनाई प्या हा गई। न खाने को अच्छा मिलता था न पहनने को ही। इस तरह चारों पुत्रवधुए दुःख से अपने दिन व्यतीत करने लगी। एक दिन की बात है चारों पुत्रवधुए अपने काम धंधे से निपट कर झरोखे में घंटी हुई आपस में बातचीत कर रही थी-बड़ी बधु ने कहा-बहिन! सेठजी की छुपा से लूना-सूना तो हमें

मिलता हा है, फिर आयविल फ्यों नहीं कर हिधा करें। यह
 शान सबका जँय गइ। अथ ये रोज आयविल तप करने
 लगा। तपस्या क प्रभाव से देवी प्रसन्न हुई और उसा
 उनको आकाश-गामिनी विधा प्रदान की।

फिर क्या था ? पुत्र यधुओं के दिन पनट। शाम होते ही ये
 सब एक बड़े राफरु पर बैठी और धारी-चला रत्नद्राप ?
 इनका कहत ही विधा के बल से यह लफकड़ आकाश में उठने
 लगा और रत्नद्वीप में जाकर रुक गया। पुत्रयधुये उतरा
 और रत्नद्वीप में घूमने लगी। पहा चारों तरफ रत्न ही रत्न
 दिगोइ दत थे। पुत्रयधुयें कुछ देर तक घूमती रहीं और
 फिर एक २ रत्न लेकर घापिल अपने घर लौट आई। घर
 आकर उ दौन अपनी दासी का एक रत्न देकर हलवाई के पास
 भेजा और यह कहलाया कि हम जा कुछ तुम्हारे स भगाये
 यह तुम भेजा करना। अथ तुम्हारे पीसे हम रत्न से अधिक दो
 जायगें, तथ हम तुम्हारा हिसाब कर देंगे और हमारा रत्न
 लेलेंगे। तथ तक यह रत्न तुम अपने पास रखो। दासी की बात
 सुनकर हलवाई बड़ा प्रसन्न हुआ और यह रत्न ले लिया।
 पुत्रयधुयें इच्छानुसार तरह तरह की मिठाइया भगाने लगी।
 अथ उनको किसी तरह का तफलाफ न रही। कुछ दिनों बाद
 हलवाई न सोचा सेठजी तो एक नम्बर के फँजून हैं। वे पेरे
 रुपये क्या देगें ? कहीं पुत्रयधुयें मुझे घोषा तो नहीं दे रही
 हैं ? उ दौन जो रत्न मरे यहा जमा कराया है न जान यह क्या
 है ? और किननी कीमत का है ? मैं ता सेठजी क पास जाकर
 अपना रुपये ले आऊँ और यह रत्न दे आऊँ। ऐसा सोच कर
 यह सेठजी के पास गया और रत्न देकर बोला-यह आपका

रत्न समालिखे और मरे रूप की जिय । सेठजी न रत्न देखा तो
 आश्चर्य में पड़ गये । उठोंन पृष्ठा-पट्ट तू कटा मे लाया ?
 हलपाद ने मध मत्र घात कट दी । सेठजी न उमका रूप
 देकर वह रत्न ले लिया । एसा रत्न उठोंन आज तक नहीं देखा
 था । ये सोचन लग-पट्ट रत्न पुत्रवधुपे कटा से लाइ है ? इसकी
 खोज करनी चाहिये । अपन परापर अपनी पुत्रवधुओं का ध्यान
 रखने लगे । एक दिन शामका सेठजी न देखा कि पुत्रवधु घर
 में नहीं है । घर क आम्रगाम बागों तरफ देखा । अपन बाड़े में
 भी देखा, लेकिन वहाँ भी पुत्रवधुपे नहीं मिली । बाड़े में एक
 कटा लफ्फड भी गायब था । जिसे देखकर सेठजी विचार में
 पड़ गये । कुछ समय बाद जब सेठजी अपन घर में आये तो
 पुत्रवधुपे घर में मिली और वह लफ्फड भी यथा-स्थान पर
 पड़ा हुआ पाया । उसे देखकर सेठजी का पट्ट टट निश्चय हो
 गया कि पुत्रवधुपे इस लफ्फड पर बैठ कर ही कहीं न कहीं
 जाती है ।

दूसरे दिन सेठजी न एक सुधार की बुलिया और उस
 लफ्फड का पाला कर नीचे एक जालादार बिचाड़ बनवाया ।
 जिसे बाँद आम्रगामी से नहीं देख सकता था । शाम होने ही
 सेठजी उम लफ्फड में आ बैठे । रोज की भाँति आज भी पुत्र
 वधुपे आए और उस लफ्फड पर बैठ गई । बिचा का स्मरण
 करन ही वह लफ्फड उड़ा आर रनटोप जा पहुँचा । पुत्रवधुपे
 रोज की तरह उतरी और एक तरफ जाकर बट गई । सेठजी
 ने बाहर मुँह निकाला तो बागों तरफ रत्न ही रत्न दिनाइ
 दिये । उठान अपन मामें सोचा मरी वधुपे कितनी मूख है ?
 ऐसी खान मिलन पर भी एक रत्न लाता है ? तो, मैं आज

बहुत सारे रत्न इकट्ठे कर लेता हूँ। देना सोचकर प बाटिर निकले और चुपरे से रत्नों को पीकर सारा लकड़कड़ मर दिया। रत्न पर भा उहें सतोष नहीं हुआ। इसलिये दो चार अयनी जेब में और दो चार अयन हाथ में भी ले लिये। फिर भटपट अयना पुत्रवधुओं से आया बचान हुए उन लकड़कड़ में बैठ गये। कुछ देर बाद वधुये आई और एक २ रत्न ले बैठ गई। लकड़कड़ उड़ा। लज्जिन आज यह मार से नीचे जा रहा था। यह देखकर उनमें स एक न कहा-बहिन ! आज तो लकड़कड़ नीचे जा रहा है। दुनिया वाली—यदि नीचे जाता है तो छोड़ दो। अयन ना यों ही चिन्ता के बल से चली जायगी। जब सठजी ने यह सुना ता ये गिड़गिड़ाते हुए बाले-झरी ! छोड़ना मत। भीतर में टुं-तुम्हारा सुसरा। तीसरी न कहा-अर ! आज तो अच्छा अयनर मिला है। दूसरी बोली—देखती क्या हो ? फिर क्या ऐसा भीका मिलगा ? फिर क्या था ? धारों हा पुत्रवधुरे लकड़कड़ को छोड़कर उड़ गई। उनके उड़ने ही लकड़कड़ नाचे रुमुद में आ गिरा। रत्नों के साथ लोभी सागरदत्त सठ भी सागर में डूब गया। इस तरह अति लोभ करने का उलझा यह फल प्राप्त हुआ।

७—जम्बू स्वामी

राजगृही नगरी में श्रारमदत्त नाम के एक सेठ रहते थे। उनके पुत्र का नाम जम्बूदत्त था। जिस दिन जम्बूदत्त आठ कन्याओं के साथ विवाह कर घर आये, उसी दिन उनके घर पर प्रमथ आदि ५०० गोरों ने छाया मारा। जम्बूदत्त का सुसराल से १६ बराह का बच्चा मिला...

में हा रखा हुआ था । प्रभय क हुकम से सब चारों न अपनी २ पोटलिया बाधनी । जम्भूकुमार अपने महल में चारों का दख रहे थे । यह हाल देखते हुए उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और उ हों माधु धनो का हठ निश्चय कर लिया । नीचे ज्योंही चार चलन को तयार हुए देव माया से उनके पाँव जमीन से चिपक गये । प्रभय १ कहा-जाते क्यों नहीं हो ? अथ क्या देव रह हा ? चारों न कहा-चल कैसे ? हमारे पाव नो जमीन से चिपक गये हैं । हम तो तिल भी नहीं मकन हैं । प्रभय सुनकर दहकावहका हा गया । ऊपर से धीमी आवाज आ रही थी । यह उसी की लक्ष्य कर ऊपर उठन लगा । ऊपर कुमार अपनी आठों हा पत्निया क साथ विवाह कर रह थे । पत्नियां कुमार न कह रही था-जय आग दीदा ही लेना चाहते थे तो हमारे साथ विवाह क्यों किया ? क्या हमारी जिन्दगी धरनाद कर क लिये आपा विवाह किया है ? कुमार ने कहा-मैंन ता यह बात पहल ही कह दी थी, इसमें मरा क्या दाप है ? अगर तुम्हारा और मरा परम्पर सधा विवाह है तो हमको ऐसा प्रयत्न करना चाहिय कि निससे फिर कभी हम इन भ्रमों में ही नहीं पडें ।

प्रभय कान लगाकर इन बातों का सुन रहा था । उसके हृदय पर हमका बडा असर पडा । यह साचन लगा कि एक ता हम हैं जो मदा पर धन आर पर खिया की ही राज किया करते हैं, और एक य कुमार ह जो प्रात सम्पत्ति और सुख-विलास को छोड कर सधम ल रहे हैं । ध य ह कुमार को ? एसा साचकर यह कुमार के परों में जागिरा और अपने कार्या का पश्चाताप कर कहन लगा-कुमार ? क्या कर मुझे भी अपने

संघ लीजिये । प्रमथ के साथ उसका ५०० साधी मी जम्बू
कुमार के साथ दीक्षित हुए और भारत पहुँचाए में समान
दा गये ।

३—घना सेठ

भारत ने दारुं हजार वर्ष पहले राजगढ़ी नगरी में घनाजी
नामके एक बड़े ही भागवान और सम्पत्तिशाली सेठ थे । उनकी
पत्नी का नाम सुभद्रा था । यह गोभद्र सेठ की कन्या और
शान्तिभद्र की बहिन थी । एक दिन जब यह अपने पति घनाजी
को मारा कर रही थी तब उसका अपन भाई की याद आ
गई । पिता का ही उसकी छाती भर आई और आँसों से
आसू बहने लग गये । घनाजी की कुछ गरम २ वृद्ध सेठजी
की पीठ पर आ गिरी । सेठजी ने सिर उठाकर पत्नी की तरफ
दृष्टा ना सुभद्रा का रही थी । घनाजी ने पूछा-तुम का क्या
बधा हो सुभद्रा ? क्या तुम्हें कोई मासिक तकलाफ है ? तुम्हें
किस बात की बन्नी है जा इस तरह अधीन हो रही हो ?

सुभद्रा ने अचानक बट से बधा-बन्नी किस बात की है
क्यामी ? आगही क्या म मर आगद है । लबिन तुम्हें अपने
भाई की याद आ गई थी । तब एकमात्र भाई शान्तिभद्र दीक्षित
दान को तम्पर हो रहा है । यह प्रतिदिन एक २ रजो का धारा
रहा है । इसी बात ने मरता हृदय क्या दिया भी म म पड़ा ।

सेठजी ने बधा-बन्नी ! इतनीमी बात पर इतना पश्चात्ताप
औरतें बड़ा भालो लागी है ? जब उम्हें समार दादना ही ह म
किर दर क्यों कर बद् है ? एक २ रजो का दादा की अगल
मभा का एक मारा क्यों नहीं दाद म ?

सेठजी की बात न सुभद्रा के घाय पर नमक छिड़का । वह रोप में आकर योली—ससार को त्यागता कोई हसी-खेल नहीं है । कटना बड़ा आसान है पर करना बड़ा टेढ़ा काम है ।

सेठजी को सुभद्रा की बात चुभ गई । त्याग की भाषा उनके हृदय में घर कर गई । वे तुरन्त उठ खड़े हुए और कहने लगे—ला मैं आज ही तुम सभी को छोड़ दिया । आज से तुम और तुम्हारी अप सौते, सभी मेरे लिये बहिन बुरप हैं ।

सुभद्रा का कल्लोता घर घर कापने लगा । वह अपने किये पर पछतान लगी । घनाजी से अनुनय विनय करने लगी । लेकिन घनाजी का मन तो त्याग की तरंगों में डिलोरें तो रहा था । उदात्त एक न सुनी । उधर स सुभद्रा की मान सौते भी आ गई । सयन घनाजी को चारों तरफ से घेर लिया । वे सब रो रा कर उठें मनान लगी । लेकिन घनाजी अपने बचन से विमुक्त नहा हुए । उ शान कडा—अगर तुम मुझ से सच्चा स्नेह रखती हो तो तुम भी मेरे साथ दीक्षित हो जाओ । अ यथा एक न दिन तुम्हें यह ससार छोड़ देगा ।

घनाजी की बात सुनकर उनकी पत्नियां भी उनके साथ हो गई । सबकी साथ ले वे अपने माले शालिमद्र के घर पहुँचे और बोले—शालिमद्र ? अच्यु काम में कतना बिलम्ब क्यों ? शालिमद्र ? जब उ हें देखा तो वे भी उनके साथ हो लिये । अत म सबन एक साथ घोर प्रभु से दीक्षा ग्रहण की और ससार के भोग विलासों को ठोकर मार कर शुद्ध चारित्र का पावन किया । इस प्रकार अपने मोक्ष मार्ग पर पथि बनकर अपना जीवन का बटपण किया ।

४—कुण्डरीक

महाराज महापन्न के दो पुत्र थे। एक का नाम था पुण्डरीक और दूसरे का कुण्डरीक। एक दिन मुनि का उपदेश सुनकर राजा दीनित हो गया और अपना राज्य भार छोड़े पुत्र पुण्डरीक को सौंप दिया। कुछ दिनों बाद जब वे मुनि पुनः यहाँ पधारे तो पुण्डरीक ने गृहस्थ धर्म अंगीकार किया और कुण्डरीक ने दीक्षा धारण की। कुण्डरीक ने कुछ ही दिनों में इग्यारह अंगों का गमीर प्राप्त प्राप्त कर लिया। तपश्चर्या भी उगदी बढाए थी। पारसे ६ दिन जैसा लूगा लूगा आहार मिलना उनीसे वे अपना निर्वाह कर लेते थे। इस कारण उनके शरीर में शह उपर की बीमारी पैदा हो गई। समय पाकर स्थविर मुनि कुण्डरीक का साथ ल उठी गगर में चल आये।

महाराज पुण्डरीक को ज्योंही मुनि के आगमन की खबर मिली, वे सग में उपस्थित हुए और शौचधावधार क लिये मुनि का प्राणना कर अपनी गगरों में ले आये। स्थविर मुनि पुण्डरीक के पास आ आधुओं को छोड़ कर अपन्न विहार कर गये। कुण्डरीक मुनि भी कुछ दिनों में पूर्ण अभ्य हो गये। लेकिन स्थविर ही जान कर भी उनका इच्छा विहार करने की गदी गई। राज मद्रकों क सु दर और क्यादिष्ट भोगों की आसक्ति ग उन पर अधिहार जमा लिया। राजा पुण्डरीक ने जब यह हाल सुना तो वे मुनि के निकट आय और माधु जीवन की तरफ से सराहना करत हुए अपने जीवन की जिम्मा काने लगे। राजा की बातों को सुनकर कुण्डरीक मुनि मन ही मन अश्विन हुए और यहाँ से विहार कर स्थविर मुनि के पास पहुँच

को सवार्थसिद्ध विमान में पहुँचा दिया। हमने यह निश्चिन्त
सिद्ध होता है कि जो विषय धामनामों के दाम ही जान हैं,
उनकी वैसी ही गति होती है। जैसी कि कुण्डरीक ही हुर।

५—शातिमद्रवी

थेणिक-विमरसार मगध देश के राजा थे। उनकी नगरी
राजगृही में गोरघन नाम के एक बड़े मेर रहत थे। शाकि
मद्रवी उन्हीं के प्रिय पुत्र थे। उनका पाम कर्म चल था। एक
दिन की बात है कि कुञ्ज र न कर्मलों के व्यापार राजगृही में
था। वे सभ से पहले थेणिक राजा के पाम कर्म। राजा न
रानियों के पाम कर्मलों को भेजे। राजा न बहुत पाम
किया। लेकिन एक कर्मल की कीमत ही कर्मल मद्रवी था।
वे कर्मल एक या दो कर्मल खरीदा मद्रवी कर्म नहीं चलता था।
अतः व्यापारियों की निराश हो लौट आया था।

प्रायः काल जब वे राजगृही में जाते, तब शाकिमद्र
की कुछ दासियों ने जो पतघट से लगे मद्रवी आ रही थी
उन्हें देखा। व्यापारी उदास थे, टांग टांगी शमीनता का
कारण पूछा। उनमें से एक व्यापारी मद्रवी उदास दिया-तुम्हें
क्या काम है इससे? तब तो तुम कर्मल मद्रवी। इस पर एक
दासी ने उनसे कहा-आप गरम कर्म, तब ही व्यापारी को तो
बड़ा सरल होना चाहिये। यह बात एक बड़े व्यापारी को सुन
गई। उसने कहा-बदिन, हम सब कर्मलों के व्यापारी हैं।
थेणिक राजा का नाम सुनकर पदाचार्य थे। लेकिन राजा
एक कर्मल तक नहीं खरीदा। मद्रवी निराश हो शाकि
जाना पड़ रहा है। यही कारण है मद्रवी उदास का है।

बस यही बात है। चलो हमारे सेठजी से भी मिल लो। वे तुम्हें ऐसे ही बड़ा लौटने देंगे। वहा जा कोई भी आता है खाली हाथ नहीं जाता है। व्यापारी तो खाइत ही यही थे। वे तुरन्त उनका साथ ही गये।

सेठजी के घर में प्रवेश करत ही व्यापारियों की आर्बे चकरान लगी। चारों तरफ दीवारों पर हारे पने जड़े हुए थे। महल का था मागों देवपुरी ही दुनिया में थी। दासियों ने शालिभद्र की माता भद्रा से व्यापारियों का परिचय काराया। भद्रा ने व्यापारियों से कहा-कम्बल कितने हैं? व्यापारियों ने उत्तर दिया-सोताइ और एक २ की कीमत है सगलाख स्वर्ण मोहरें।

मैं कीमत नहा पूछती हू। मुझे तो ऐस ३२ कम्बलों की आवश्यकता थी। और मुगिजी, इनको बीस लाख माहरें देकर कम्बल ले लो।

भद्रा का उदारता और अचूक सम्पत्ति देण कर व्यापारी उनकी प्रशंसा करत हुए बहा स विदा हुए।

माता भद्रा ने एक २ कम्बल के दो ० टुकड़े कर अपनी ३२ ही दुबुआ को बाट दिया। बन्धों ने एक दिन ओढ़कर दूसरे दिन अपना २ शरीर पीछ कर महल का पीछे फक दिया। महे नराना महल साफ करमे आई। डमन उन कम्बलों का उडा क्रिया और अपन घर ल गइ। यही महतरागी राजमहल में भी भाङ लपाती थी। एक दिन वह रतन कम्बल ओढ़कर राजमहल में भाङ् दे रही थी। इतने में राणियों ने उसे देण दिया। राणियों ने उसे पास बुलाकर पूछा-तुमको यह कम्बल

यैसे मिला ? महतराती ने सारा हात कट सुनाया । रानियों ने राजा से यह बात कही और शालिभद्र की सम्पत्ति की सराहना की । राजा ने शालिभद्र से मिलन की ठानी । उसने एक दिन उसके अपने महलों में बुलाया, लेकिन भद्रा न कहलाया कि मेरा पुत्र किसी से मिलना जुलना नहीं है । अगर राजा चाहें तो मैं उपस्थित हो सकती हूँ । तब राजा स्वयं शालिभद्र से मिलन के लिये आये । भद्रा ने उनका बड़ा मान सम्मान किया । महल को ईश्वर राजा चकित हो गये ।

राजा को रत्न जड़ित सिंहासन पर बैठाकर भद्रा ने अपने पुत्र को नीचे बुलाया । शालिभद्र ने जवाब में कहा-भा, यदि श्रेष्ठ कामकी बात चीज आह है तो आप उसे परीक्ष ल । मैं तो पुत्र समझना नहीं हूँ ।

माता ने कहा-नहीं देना श्रेष्ठ कोर परीक्षण की चीज नहा है । यह तो अपने राजा हैं । जरा नीचे आकर मिल लो ।

शालिभद्र नीचे आये । राजा ने उठाकर लिर चूवा और अपनी गोद में बैठा लिया । कुछ देर बातचीत कर शालिभद्र पूरा ऊपर चले गये । लेकिन यह बात उसके हृदय में काट की तरह चुभ गई कि क्या भी मरा कोई राजा है ? अब तो मुझे ऐसा काम करना चाहिये कि जिससे मरा कोई राजा ही नहीं रहे । श्रेष्ठ विचारों ने शालिभद्र के हृदय में घैराग्य का अक्षर पैदा कर दिया । जब उन्होंने भगवान महाशर का उपदेश सुना तो उनकी यह भावना और अधिक प्रबल हो गई । फिर क्या था ? अपनी अटूट सम्पत्ति का ठाकर मारकर ये धनराजी

के साथ माधु बन गये और सयम पालन करने हुए मोक्ष मार्ग के पथिक बन ।

६—महात्मा गजसुकुमाल

मुनि गज सुकुमाल श्रीकृष्ण महाराज के छोटे भाई थे । इनका रूप बड़ा ही सुन्दर था । श्रीकृष्ण महाराज ने अपने माई के अरुरूप ही सुन्दर व युद्धिमती सोमिल ब्राह्मण की कन्या के साथ उनका सवध निश्चित कर लिया । एक दिन की बात है भगवान् अरिष्नेमि गज २ विचरण करते हुए द्वारिका में पधारे । नगरी के सर लोग प्रभु के दर्शनार्थ गये । गजसुकुमाल भी साथ रे । भगवान् ने अपने उपदेश में कहा कि ससार के सुख वैभवा पाणि के फेन की तरह क्षणिक हैं । इनसे धवन क लिये केवल धैर्य ही एक एसा साधन है जिसमें किसी तरह का भय नहा । कुमार पर यह उपदेश असर कर गया । उनके हृदय में दीक्षा के भाव तीव्र रूप से हो आये । घर आकर उहोंने अपने माता पिता से लीला की अनुमति मागी । कुमार की बातें सुनकर सबको बड़ा विस्मय हुआ । सब लोग उहें समझान लग । स्वयं कृष्ण महाराज ने आकर समझाया । लेकिन कुमार अपने निश्चय से तिल भर भा नहीं हटे । आखिर कार माता पिता के अनुरोध से एक दिन के लिये राज्य सिंहासन पर बैठ कर दूसरे दिन उहोंने प्रभु के समाप दीक्षा प्रदण की । दीक्षित होते ही उहोंने प्रभु से आज्ञा ली और महाकाल नामक भयानक स्मशान में तप करने के लिये चले गये । घटा उ होने रात भर ध्यानारूढ हो खड़े रहने की प्रतिज्ञा की । धारों तरफ शक्ति थी । मुनि ध्यान में सलग्न हो खड़े थे । इतने में ही उनका

मायी श्वसुर सोमिल ब्राह्मण यज्ञ के लिये समिधा को लेकर उधर से आ गिला। यह कुमार को साधु भेष में देखकर आग बजुला हो गया। 'बोहा-अरे निर्लज्ज ! अगर यही ढोंग करना था तो मेरी निर्दोष कन्या के साथ सम्यग्ध क्यों किया ? इसका फल अभी मैं तुम्हें चम्पावा हूँ। यह कह कर उसने पाम ही के जलाराय से कुछ गिली मिट्टी ली और मुनि के मिर पर पाल धावकर उसमें घघकने हुए अगारे डाल दिए। मुनि को असह्य वेदना होने लगी। सिर जकने लगा। शरीर भी नल तान लगी। लेकिन फिर भी मुनि अघिउल खड़े रहे। उनके मनमें सोमिल के प्रति तनिक भी क्रोध पैदा नहीं हुआ। इस प्राणान्तक दुख को भी मुनि न दसते रह सट्टा किया। परिराम-स्वरूप उनकी आत्मा अपने शरीर को छोड़कर मोक्षपुरी में विराजमान हो गई।

७—महाराजा उदाई

भगवान महावीर के समय में निधु नदी के किनारे घात-भयपाटण नामक एक सुन्दर नगर था। महाराजा उदाई वहा के राजा थे। ये बड़े ही धर्मात्मा थे। भगवान महावीर का उपदेश सुनकर उनको वैराग्य पैदा हो गया। उन्होंने भगवान के पाम दासित होने की ठानली। परन्तु राज ब्राह्मण की विन्ता उनकी मनाग लगी। ये सोचने लगे कि जिन काम को मैं घुरा समझ कर छोड़ रहा हूँ, उसी काम का मैं मेरे पुत्र का कैसे सौपू ? ऐसा सोचकर उ होंने अपना राज्यभार अपने भानजे को साव दिया और न्यय पार प्रभु के पाम जा दीसित हो गये। पिता के इस शुभ कार्य को पुत्र न घुरा समझा। वह उस नगरी को छोड़कर अन्यत्र चला गया।

महाराजा उदाह शुद्धभाव से सयम का पालन करते हुए एक दिन अपना मगरी में भी आ पहुँचे। उनके भानजे को यशर मिली तो उन्होंने समझा कि मेरे मामाजी मुझ से राज्य छीन कर पुत्र अपने पुत्र को देने के लिये आ रहे हैं। इसलिये उन्होंने अपने राज्य में घोषणा करा दी कि कोई भी मनुष्य उदाह मुनि को आहार पानी नहीं बहरावे और न ठहरने की ही स्यात है। जो इस हुक्म का पालन नहीं करेगा उसका प्राणांत कर दिया जायगा।

मुनि मगरी में पधार। वे अपने मास खमण के पारने के लिये घर २ घूमन लगे। लेकिन राजाशा के अनुसार किसी न उनको आहार-पानी नहीं बहराया। मुनि एक महीने स भूखे तो थे ही फिर गृध्र ऋतु की धूप ने और विहार की थमापट ने मिलकर उनका दाह ज्वर पैदा कर दिया। मुनि की यह रूशा देख कर एक कुम्हार से न रदा गया। उस न राजाशा को बुकरा दी और बड़े ही प्रेम स मुनि को अपने घर लेजाकर आहार पानी का दान किया। मुनि के दाह ज्वर की यशर जब राजा का हुई तब उसन एक वैद्य को बुलाया और कहा कि तुम मुनि को दवा के बदान विपदेकर उनका काम तमाम कर डालो। अन्यथा तुम्हें काटहू में पील दिया जायेगा। वैद्य मुनि के पास गया और दिग पृथक् उनका दाल पूछने लगा। मुनि को भया नक रोग से पाडिग जानकर वैद्य ने उन्हें तत्काल अपनी औषधि सेवन करन का कहा। मुनि निस्सकोध हो हसत २ दवा के बदान उस हलाहल जहर का पान कर गये। विपकी गरमी से मुनि का दाह ज्वर और भी बढ़ गया। लेकिन फिर भी उनके मन में किसी के प्रति तनिक भी बुर भाव पैदा नहीं हुए। इसी

मायशुद्धि के कारण मुनि का अधिष्ठान पैदा हो गया। उस क्षण से उन्होंने यह भली भाँति जान लिया कि राजाआ से वैद्य न मुझे जहर पिला दिया है। राजा के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए वे कहने लगे कि मैंने तो अपने भानजे के साथ घोर अत्याचार करने राज्य भार सौंपा था लेकिन उसने मेरे साथ कैसा सद् व्यवहार किया ? उसने मुझे ऐसा विष पिलाया कि जिसे पीकर मैं अपनी जिन्दगी श्राद्ध ही समान कर सकूँ। लेकिन मैंने तो उसे ऐसा विष पिलाया कि वह हमसे २ उसे पीना रहे और जन्म जन्म त्यों तक उसका फल भोगता रहे। मैं उसका साथ बड़ा अन्याय किया है। इसका जितना भी दंड मुझे मिल उतना ही थोड़ा है। इस प्रकार उदाह का अपनी प्रत्यालोचना करन २ वेदज्ञान की प्राप्ति हो गई। उन्होंने उपशम भावों से अपनी आत्म शुद्धि कर शिव सुख को प्राप्त कर लिया।

८—अरण्य श्रावक

छम्पापुरी नगर में अरण्य नामक एक वैभवशाली वैश्य रहत थे। वे बड़े ही धर्मात्मा थे। धर्म पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। एक दिन की बात है कि वे कुछ व्यापारियों के साथ जहाज में बैठ कर विदेश का जा रहे थे। कुछ दूर समुद्र में जाते पर एक देव न अरण्य की पीशा करनी पाही। उसने अपना गाथा जाल फैलाया। समुद्र में तूना आन लगा। घनघोर वर्षा प्रारम्भ हो गयी। आकाश में बिजलियाँ चमकने लगी। चारों तरफ देवता के कई रूप नजर आने लगे। उनमें से एक न हाथ में तलवार ले अरण्य से कहा—अरण्य ? समझ जा। अब भी समय है, तू यह कहदे कि जिघर्षा भूना है। परना अभी

मौत के घाट उतार दूंगा। तेरे कारण इन नेगर दूसरों को भी वे मौत मारना पड़ेगा।

अरणक न कहा—देव ! तुम क्या स्वयं इन्द्र भी क्यों न आ जाय और चाहे जितना प्रलोभन क्यों न दे, तब भी मैं अपने धर्म का असत्य नष्टा कर सकता।

देव तो कह ही रहा था पर उसके साथियों ने भी डर के मारे उससे बहुत कहा। डाट-डपट भी बताई। लेकिन अरणक पर कुछ असर नहीं पड़ा। देव न कोई उपाय किये। भीषण रूप धारण कर डराया, धमकाया भी। लज्जित फिर भी काम न घना। अरणक अपने धर्म पर दृढ़ रहे। आसुरिकार उसने जहाज का उठाया और आकाश में ले उठा। अरणक के साथी फूट पूट कर राग लगे। किसी को अपने जीवन की आशा न रही। सब अरणक से अनुत्पाय विनय कर रहे थे और यह समझा रहे थे कि किसी तरह यह कहें कि मैं मेरा धर्म छोड़ता हूँ। लेकिन अरणक पर कोई रंग नहीं जमा सका। देव हार गया। उसने अपनी माया समझी और अपना असली रूप धारण कर अरणक के सामने उपस्थित हुआ। उसने अपने अपराधों की क्षमा मांगी और दो कुण्डल की जोड़ी भेंट कर अपना स्थान को चला गया। भयंकर विपत्ति आन पर भी अरणक आसुरिक न अपना धर्म नष्टा छोड़ा। इससे उनकी विजय हुई।

६—बाहुवली

भगवान् ऋषभदेव के बड़े पुत्र का नाम था भरत और छोटे का नाम था बाहुवली। भरत जब छह खंड पृथ्वी का

राज्य जीतकर आगये तब बाहुबली ने उन्हें अपने से युद्ध करने का ललकारा और फिर ब्रह्मपती वनन को कहा। व्यर्थ ही दोनों सेनाया क सहार का साथ कर भरत और बाहुबली का ही परस्पर युद्ध तय किया गया। बाहुबली बलवान थे। अतः भरत उन्हें परास्त नहीं कर सके। यद्यपि युद्ध में बाहुबली विजयी हुए लेकिन तत्काल उन्हें इस राज्य वैभव में विरक्त हो गई। वे अपने पिता ऋषभदेव के समीप गये और दास्य ल घोर तप में लीन हो गये।

कुछ दिनों बाद भरत भा समार से विरक्त हो दीक्षित हुए और छद्म दिनों में ही अपना शुद्ध भावों से कवल ध्यान को प्राप्त कर गये। भरत को वैफल्य प्राप्त हुआ जानकर सब लोग उन्हें बदन करने आये। लेकिन बाहुबली गढ़ा था। उनका मन में यह अहंकार समाया हुआ था कि मैं मरे से छोट भाइयों का बदना कैसे करूँ ? यम, इसी विचार से वे अपने ध्यान में खड़े रहें और तपस्या करते रहें। लेकिन हृदय से मान को नहीं त्यागा। भगवान ने अपने ज्ञान से बाहुबली के भावों को जाना और उन्हें समझाने के लिये अपनी कन्या ज्ञानी और सुन्दरी को उनके पास भेजा। दोनों सतियों ने बाहुबली के कठिन तप को सराहना करते हुए कहा—य घन। अभी आप अहंकार रूपी द्वायी पर सधारी क्रिय हुए हैं, इसलिये अब तक आपका सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी है। हमको भगवान ऋषभदेव ने आपका पास भेजी हैं। अतः अपने हृदय से मान का निवाल बाहिर करिये और अपने भाइयों का यत्न करने वधारिये।

बाहुबली ने जब अपनी बहिन ज्ञानी और सुन्दरी के ये शब्द सुन तो वे मन ही मन बहुत परमात्माप कर लगे।

पश्चात्ताप आ जाता है वहा फिर मान नहीं रह पाता । बाहु-
बली न जैसे ही अपना पाप भरतादि मार्यों का सम्मन करने के
लिये आगे बढ़ाया, वैसे ही आपको भी कयल ज्ञान होगया ।

१०—मरीचि

भगवान् श्रुतमदेव को कयल ज्ञान हो जाय पर ये ग्राम २
विचर कर उपदेश देने लगे । विचरने २ एक दिन ये आषाढग
नगरी में पधारे । भरत महाराज आदि उनका घन्ना करने
गये । घन्ना कर भगवान् न यह प्रश्न पूछा कि भगवान् !
क्या कोई यहा भी ऐसा प्राणी है जो आगे जाकर आप ही के
समान तीर्थंकर बन और धर्म की प्रभावना कर ? भगवान् न
कहा-भरत, तुम्हारा पुत्र मराचि ही एकमात्र ऐसा जीव है जो
आगे जाकर चौबीसवाँ तीर्थंकर बनगा । भगवान् के प्रथम
सुनकर भरत महाराज राजमहलों में आय और अपना पुत्र
मराचि को भाषी तीर्थंकर समझ कर नमस्कार किया । इससे
मरीचि क मग में अहंकार पैदा होगया । यह गला २ में फिर
कर कहा लगा कि-मैं तीर्थंकर बनूंगा, मैं तीर्थंकर बनूंगा ।
इसी भाग पर घशीमूत हो मरीचि ने अपने गुरं कर्मों का प्रत्य
किया । जिसके फलस्वरूप उन्हें कुछ काल के लिये प्रालम्बी के
पेट में रहना पड़ा । जबकि सब तीर्थंकर सत्रियकुल में ही
आते हैं ।

११—भगवान् मन्जिगाय

महाविन्ध क्षेत्र में धीतशोका नाम की एक नगरी थी । वहा
महापल राजा राज्य करता था । उसका अन्तर्गत धरणा परगना

वसु, वैशम्पय और अमिचन्द्र नामके छह मित्र थे। एक दिन
 चलने अपने मित्रों से बड़ा-मित्रों में शय ससार से ऊप गया हू,
 इसलिये मेरी इच्छा समय लेने की है। आप लोगों की क्या
 इच्छा है ? मित्रों न बड़ा-महाराज। हम तो बचपन से ही
 आपके साथ रहे हैं। बात समय मार्ग में भी साथ ही रहेंगे।
 महाबल राजा ने राज्यभार अपने पुत्र का रूप पर छोड़ो मित्रों
 के साथ दीक्षा धारण करती। दीक्षा लेकर सातों न यह प्रतिज्ञा
 की कि हम सब समान रूप से ही तप करेंगे। यह प्रतिज्ञा ले के
 अनेक प्रकार की तपश्चर्या करने लगे। किन्तु महाबल न विचार
 किया कि मैं सब से बड़ा हू अतः मुझे अधिक तप करना
 चाहिये, नहीं तो भविष्य में सब समान ही रहेंगे। मरने बहप्यन
 नहीं रहेगा। ऐसा सोचकर महाबल मुनि धारणे के दिन आज
 मेरा सिर दुखता है-आन मेरा पट दुखता है आदि महाना घना
 कर धारणा नहीं करत और तपस्या आगे बढ़ा देते थे। इस प्रकार
 मुनि न अपने धार तप से तीर्थंकर नाम कम का उपासना ता कट
 लिया, लेकिन कपट से तप करने व कारण मुनि न स्त्री धेद का
 यथ किया। जिसके फलस्वरूप महाबल मुनि १६ वे तीर्थं-
 कर मल्लिनाथ स्त्री रूप में पैदा हुए। अतः कपट-पूवक तप नहीं
 करना चाहिये।

१०—कपिल ब्राह्मण

कपिल ब्राह्मण कोशाम्बिक नगरी के रहने वाले थे। इनके
 पिता का नाम काश्यप और माता का नाम यक्षा था। बचपन
 से ही इनके पिता के गुजर जात से इनका ध्यान योग इनकी
 माता ने किया था। जब कपिल पुत्रुष्टट दुग्धो दे माता की भ्रजा

ले थावस्ती में विद्याध्ययन के लिये गये। विद्यार्ध्ययन करते हुए वहा एक दामी से प्रेम हो गया फलत वे उसके प्रेम पाश में फँस गये। एक दिन नगर की महिलायें घस-तो-सत्र मनाये जा रही थी। कपिल की प्रेमिका भी गई। लेकिन दूरिद्रता के कारण उसके शरीर पर न तो कुछ अच्छे पट्टे ही थे न कुछ गहन ही। दूसरी स्त्रियाँ बड़ी सज्जन के आइ थी। उनको देखकर वह लज्जावश स्थागित आगई, तथा अपने आग का कारण कपिल को कह सुनाया। कपिल भी विषय था। जहाँ पाने को भी पूरा न हो घटा गहनों की क्या बान ? कपिल की प्रेमिका ने एक बात पनाई। उसने कहा कि वहा का राजा प्रतिदिन दो मासा सोन का दान देता है। अतः आप उसको पाने का प्रयत्न करें।

प्रेम का भ्रूषा क्या नहीं करता। कपिल ने यह भी किया। लेकिन एक दिन भी उसको दान नहीं मिला, क्योंकि उसके पहले ही कोई न कोई राजा व पास पहुँच कर दान प्राप्त कर लेता था। इसलिये वह एक दिन, रात को ही घर से निकल पड़ा। रात अधिक् होने से कानवाल ने घोर समझ कर उसे पकड़ लिया और सुबह राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा के पहचान पर कपिल न सच २ बात कहदी। राजा बहुत खुश हुआ और उसकी सच्चाई पर प्रसन्न होकर घर मागने को कहा। अब तो कपिल को खुशी का ठिकाना न रहा। वह सोचने लगा कि २ माशा सोने से क्या होगा ? राजा प्रसन्न हो कर देता है तो सो मोहरें क्यों न माँग लू। लेकिन सो मोहरें भी बढ़ तक चलेगी, ये भी कुछ दिनों में समाप्त हो जायगी। अतः राजा का राज्य ही माँग लू। लेकिन राय भी

“कहाँ दूसरा राजा छीन ले तो ? इस प्रकार अणन मन में धिक्कार करने २ भावनाएँ पलटती और लोभ का छोड़ कर आत्म शुद्धि में लग गई। जो कविल राज्य मागने को उतार हो रहा था वही अपनी आत्मा को धिक्कारता हुआ अंतरकाल में ही धीतरागी बन गया। परिणाम स्वरूप दशरते ही देखते उसको केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अब कविल बेधली बन गये। उत्तराध्ययन सूत्र का आठवाँ अध्याय इनका ही उपदेश है। पढ़ा जाता है कि जगल में चोरा को समझाने के लिये इन्होंने उसका उपदेश दिया था।

११—चिच मुनि

प्राचीन समय में काजी को दाराणसी नगरी कहते थे। एक समय वहाँ शक राजा राज्य करते थे। नमूचि उन्का प्रधान था। राजा की रानी के साथ प्रधान का व्यवहार अच्छा नहीं था। एक दिन वह गुप्त यात राजा को मारूम हो गई। उसने नमूचि की प्रणयदंड की मज्जा की। नमूचि की कामी देव का कार्य इन्द्रमूत लाण्डाल को सोपा गया।

नमूचि कलाओं का जानकर था। उसने इन्द्रमूत को धन का लोभ दिया और कदा-भगर तुम मुझे नहीं मारोगे तो मैं तुम्हारे लक्षकों को कलाओं में निपुण कर दूंगा। इन्द्रमूत ने उसे नग मारा और अपने घर में रख लिया। नमूचि उसके पुत्र त्रिल और समूनि का पढ़ाने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने इन्द्र कलाओं में निपुण कर दिया। अब तो इन्द्रमूत उसका बड़ा भइसाग मानने लगा।

एक दिन इन्द्रगुप्त की स्त्री के साथ भी नमूचि का अमरद्वयवहार देख लिया गया, जिस इन्द्रभूत राहू न कर सका और उसने उसका मारना चाहा। लेकिन इन्द्रभूत के पुत्रों से नमूचि को इस बात का पता चल गया। तब वह मरते के मय से यहा से भाग कर हस्तिनापुर चला गया और यहा के राजा सातकुमार चक्रवर्ती का भ्राता बन बैठा। इधर नित और सभूचि जो सगीत विद्या में पूरे निपुण हो गये थे, गाते गाते गाय २ विचरने लगे। इनके सगीत में ऐसा जादू था कि जहा भी ये गाते हुए निकलते, जाता अपना बागजात छोड़ कर वादिर निकल पड़ता। स्त्रियाँ और विधायक कर कुलीन घरों को खिन्ने तो घर से निकल कर तदनु रूप नाच करी लग जाती थी। कुछ लोगों को यह बात पसन्द नही आई। उन्हीं राजा से जान्ते उनकी शिकायत की। राजा ने बिना कुछ सुना ही उन बालकों का नगर से विदाहित कर दिया। इस अपमान से उन्हे गहरी चोट पहुँची। वे आनन्दत्याग करके लिय एक पहाड़ पर चढ़ गये, जहा उन्हे काई देख न सके। लेकिन सभी उन्हे दुनिया में रहना बाकी था। इन पहाड़ पर एक सवमघारी मुनि से उनकी भेंट हो गई। मुनि ने सदुपदेश से चित्त और समूर्ति न दीक्षा अगाकार करला। अब वे कठिन तप करते हुए इधर उधर विचरने लगे।

एक दिन वे घूमते २ हस्तिनापुर में आये। उस दिन उन दोनों के मास समण का पारणा था। नमूचि का उनके आने की खबर मिली। उन्हे भय हुआ कि कहा ये मरी पोत नहीं खोल दें। इसलिये उन्हे अपने नौकरों से कहा कि तुम जाओ और उन मुनि का मारपीट कर वादिर निकाल दो। नमूचि की

आज्ञा से नौकरो ने उन्हें बहुत मारा पीटा । महामुनि चित्त के माँ में तो तनिक भी रोग पैदा नहीं हुआ, लेकिन समूति यह सहन नहीं कर सके । उन्होंने नगर पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया । जिससे चारों तरफ धुआँ ही धुआँ फैल गया । चित्त ने समूति को बहुत समझाया, तब कहीं वे शांत हुए । आखिर में दोनों ने संधारा ग्रहण कर लिया । जब यह समाचार इन्दिरापुर के सम्राट को मालूम हुए तो वे सङ्कुटम्भ मुनियों के पास आए और अपना मंत्री व अरराध की समावाचना करने लगे । रानी ने अपना सिर मुणियों के चरणों में झुकाया । उसने वालों की मधुर सुगंध ने चित्त को उलझन में फँसा लिया । वह इस तरह के सुख वैभव पर मुग्ध बन गये । उन्होंने निदान किया कि अगर मेरी तपस्या का कुछ फल हो तो मैं भी ऐसा ही सम्राट बनकर सुख वैभव का प्राप्त करूँ । चित्त ने अपने भाई को बहुत समझाया और कहा कि इस तरह तुम अपनी अमूल्य तपस्या को कौटिल्य के मूत्य में मत देवो, लेकिन समूति पर कुछ असर नहीं हुआ । फलतः समूति का जीव अपने निशा के अनुसार ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना और चित्त पर सेठ के यहा पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । समय पाकर सेठ के पुत्र ने दीक्षा ग्रहण की और मुनि मार्ग का अनुसरण करते हुए अपना आत्मा का कल्याण किया । उधर समूति का जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना और विषयाँ में लीन रहने के कारण नरक का मइमाग बना ।

१२—सेठ सुदर्शन

सेठ सुदर्शन चम्पागरी के निवासी थे ।
 लकी सम्पत्ति थी । उनकी पतिव्रता स्त्री का नाम

जिनसे उनके पास पुत्र पैदा हुए थे। गिता की तरह पुत्र भी बड़े ही रूपवान् और कात्तियाग थे। सेठजी का राज-पुरोहित के साथ बड़ा प्रेम था। एक दिन पुरोहितजी कहां बाहर गये हुए थे। पुरोहितानी सेठजी के रूप पर मुग्ध बनी हुई थी। उसी अपनी दुर्भाग्या पूरी करने के लिये सुदर्शन को कहला भेजा कि पुरोहितजी बहुत बीमार हैं, वे आपको शीघ्र बुला रहे हैं। यह सुनते ही सेठजी दौड़ आये और पुरोहितजी को देखने लगे। लेकिन घर में तो मामला ही कुछ और था। उन्होंने पुरोहितानी से पूछा-कहाँ है पुरोहितजी? अब उनकी तयियत कैसी है? पुरोहितानी ने सेठजी का हाथ पकड़ते हुए अपने मन की बात कही। सेठजी दह भर्मी थे। परदार मग ब ये त्यागा थे। उ दोनों पुरोहितानी को बहुत समझाया, पर तु चिक्कन घड़े पर पागी का गूदों की तरह उस पर काह असर नहीं हुआ। आदिरवार जब सेठजी न काह चारा नहां देखा ता खली पुरोहितानीजी से कहा-मरे न तुम क्या चाहती हो! मैं ता नपु सक ह। यह सुनकर पुरोहितानी ब साथ डील पड़ गय। उसने सेठजी को छोड़ दिया। सेठजी खुशी से घर आय और अपने भाग्य की सराहना करन लग।

एक दिन सेठानी अपने पुत्रों को लेकर किसी उत्सव में जा रही थी। राजमहलों से रानी अमवा ने उठ जाने हुए देखा। पुत्रों की सुन्दरता को देखकर यह मुग्ध हो गई। जब यह बालक इतन सुन्दर है तो इनके पिता किस रूपवान् होंगे? यह विचार रानी के मन में समा गया। उसने पास में बैठी हुई पुरोहितानी से पूछा-ये पुत्र किसके हैं? पुरोहितानी न मुँह बनाकर कहा-आप जितने सती कहकर तारीफ करती हैं ये उसी मनोरमा के •

पुत्र हैं। रानी ने कहा—तो क्या तुम्हें उनसे सतीत्य में सदेह है ? पुरोहिताजी ने कहा—आपको क्या मालूम रानीजी ? उनका पति सुदर्शन तो गपु स्वरूप हैं। यह कैसे कहनी है नू ? रानी न पूछा। तब उसका अपनी सारी घटना रानी को कह सुनाई। उसकी बात को सुनकर रानी छनी आर पाली—तुम्हें मैं अर्द्धमी को फलान की कला नहीं है। सुदर्शन बड़ी हौशियागी से तरे पजे से निकल मागा। देखना मैं अब उस अपने पजे में कैसे कर तुम्हें पता रूँगी। पुरोहिताजी ने उसे उत्तेजना देत हुए कहा—इसकी हूँ आप कैसे उस अपने पजे में फलानी है ? रानी सुदर्शन का फँसाने का व्यवहार देखन लगी।

एक दिन नगर के समीप - पुरुष नगर के बाहर कीमुदी समय मना रहें थे। सुदर्शन की पत्नी मनोरमा भी अपने पुत्रों सहित महा मय मनान गई लेकिन सटजा अपनी पौषधशाला में पोषा ले ध्यानस्थ बट हुए थे। राजा रानी से बाहिर चलने को कहा। लेकिन जब रानी न यह सुना कि सुदर्शन बाहिर नहीं गया है तो उसने भी एह दुःख का बहाना कर बाहिर चलन में इकार कर दिया। राजा अपने दरबारियों सहित नगर के बाहिर आ गया। महलों में राजा के सिंघास और कोइ न रहा। रानी की दासिया यथासमय सुदर्शन को उठाकर अपने महलों में ले आई। सुदर्शन धन में था। कहा, सुतन या शरीर से जोर करन में उसका धन भग होना था। अब यह अपने धन में लीन रहा।

रानी तरह २ के परनालकारों से सुसज्जित हो सुदर्शन के सामने उपस्थित हुई आर उ हैं अपनी तरफ आकर्षित करन लगी। लेकिन सुदर्शन अपने ध्यान में लीन रहे। रानी का कोइ

पशु उत पर न चला। लाचार हो उमने पदरेदारों को चिह्नाते
 हुए कड़ा-पकड़ो-पकड़ो, यह पापी सुदर्शन मेरा सतीत्व भंग
 करने के लिये महलों में घुस आया है। यह सुते ही पदरेदारों
 ने सुदर्शन का कैद कर राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा
 के क्रोध की सीमा न रही। उसी तुरन्त सुदर्शन को शूली पर
 चढ़ा देने की आज्ञा देदी। अगर मैं नदलका मच गया। सेठजी के
 शीलवत की धारों तरफ मद्दिमा फैला हुई थी। सभी ने सेठजी
 को बचाव के लिये राजा से प्रार्थना की। लेकिन राजा ने किसी
 की न सुनी। सेठजी को शूली पर लाया गया। शील का अर्धदण्ड
 तंज उनके माथे पर चमक रहा था। उन्हें इच मात्र भी छुष
 नहीं था। नवकार-मंत्र का स्मरण कर चे मन ही मन सबसे
 क्षमा याचना कर रहे थे। लक्ष्मी क्या कभी सत्य को आ धेरे
 में रटा जा सकता है? सहसा एक देवी घटना घटी। शील के
 प्रभाव से सुदर्शन की शूली सिंहासन पर गई। दृघताओं ने
 पुष्पवृष्टि कर जय जयकार किया। लोगों की शूशी का पारावार
 न रहा। राजा ने अपनी भूल स्वीकार कर क्षमा मागी। इस
 प्रकार सुदर्शन के सत्यशाल की विजय हुई। यह है शील का
 प्रभाव।

१३—अर्जुनमाली

महाराजा धेरिक की राजगृही नगरी में अर्जुन
 नामक एक माली रहता था। यह शहर से सुदाल सुदर्
 तथा स्वस्थ था। उसका एक बगीचा था जहाँ मुद्गर-वाण
 यज्ञ को एक प्राचीन मूर्ति थी, अर्जुनमाली बचपन से ही
 उसकी पूजा विश्व करता था। उसी नगरी में ६ गुंडे रहा
 करते थे। इनकी धाक सारी नगरी में फैली हुई थी।

एक दिन अर्जुनमाता अपनी स्त्री बधुमती के साथ अपने बगीचे में आया और गंग की पूजा करने लगा। ज्योंही अर्जुनमाता यज्ञ की पूजा कराने में लगता हुआ त्योंही उन बदमाशों ने उसको पकड़ कर बाध दिया। बधुमती अकेली थी, बदमाशों ने उसके साथ मामाता अत्याचार किया। अर्जुनमाता की आत्मा स खूब घबरा रही थी। उनको अरागी आँसों के समुद्र ऐसा अत्याचार देखकर यज्ञ की मूर्ति पर तनिक भी ध्यान नहीं रही। यह मन ही मन यज्ञ को बुरा भला बहकर दुःख करने लगा। इसने मूर्ति के अधिष्ठात्यक यज्ञ का आसन चला। उसने अर्जुनमाता के शरीर में प्रवेश किया। उसके प्रवेश होते ही अर्जुन के सब यज्ञ टूट गये। उसने एक साथ ही लौह मुद्गर से अपनी स्त्री और उन दो बदमाशों का काम नमाम कर दिया। इतने पर भी उसका क्रोध शांत नहीं हुआ। यह प्रतिदिन नगर के ७ धर्मियों की घात करना लगा। लोग डरके मारे दैरान थे। किला की हिम्मत नगरी से बाहिर जाने को नहीं होती थी।

देव योग से उर्दो दिनों मगधात महारथार भी विचरते २ राजगृही नगरी के बाहिर पधारे। जब राउ सुदर्शन को यह रापर हुआ तो यह प्रभु दगा के तिये तपचा उगा। सुदर्शन के माता गिना न उाका यजन रोधा और अर्जुनमाता का मय दिग्राकर मना किया, लेकिन सुदर्शन की अति भारा प्रबल थी। ये किला गरद माता गिना की अनुमति से दर्शन को खन दिये। मार्ग में उर्दो देवने ही अर्जुनमाता मुद्गर से दीडा आया। सुदर्शन उग समय प्रभु को तमस्कार कर मागारी आशात साथ ध्यानस्थ राड़े दी गये।

अपना मुद्गर उन पर उठाया, सुदर्शन के तप और तेज के समुच्चय वह ऊपर ही रह गया। पीछे नहीं आसका। यत्न अपनी शक्ति पर लज्जित हो अर्जुन के शरीर से भाग निकला। अर्जुन निर्वल हो घरती पर गिर पड़ा। सुदर्शन ने जब समझा कि अपना उपसर्ग अब शांत हो गया है, तब उसने अपनी प्रतिष्ठा का पालन किया। अर्जुन को दोष आते ही वह भी सुदर्शन के साथ प्रभु महावीर के दर्शन को चला पड़ा।

उसने भगवान का उपदेश सुन कर शीघ्र धारण कर ली। वह जो अर्जुन मनुष्यों की घात करता फिरता था वही अर्जुन आज सत्संगति में पच महावतधारी मुनि बन गया। मुनि बन कर अर्जुन ने तपश्चर्या करनी प्रारम्भ की। भिक्षा जाते समय लोग कई प्रकार से उसका अपमान करते और ताड़ना तजना भी करते थे, लेकिन मुनि ने सबको दृढ़ता से सहन कर ६ महीने में ही केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया।

१४—परदेशी राजा

लगभग सत्तरस सौ वर्ष पहले सिताम्बिका (पेशावर) में परदेशी राजा राज्य करता था। वह बड़ा नास्तिक था। दया धर्म क्या होता है इन्हे यह ज्ञानता ही न था। आत्मा परमात्मा पुण्य, पाप, स्वर्ग—नरक आदि को यह कोरी कल्पना ही समझता था। चित्त उसका प्रधात—मग्न था। एक बार राजा परदेशी ने अपने परम मित्र अजितशत्रु को कुछ बहुमूल्य चीजों को भेंट करने के लिये अपना प्रधात को भेजा। अजितशत्रु की नगरा में रुयोगयश पेशीधमश नामके मुनि विराजमान थे। उनके उपदेशों को सुनने के लिये हजारों की भीड़ लगी रहती थी। चित्त को भी अनायास ही मुनि का उपदेश सुनने को मिल गया। चित्त के हृदय पर मुनि का अमिट प्रभाव पड़ा। उसने

बहर आस्तिक या गृहस्थ धर्म धारण किया, और मुनि से सिताम्बिका पधारने की वितती की। मुनि भी जगद्वन्द्वनते हुए एक दिन सिताम्बिका पधार गये। मन्त्री को इस बात की सूचना मिली। सारी जनता मुनि दर्शनाय जा रही थी। मन्त्री भी धूमन के बहाने राजा को लेकर बाहिर निकला। अपने घग के में लोगों की भीड़ देखकर राजा ने मन्त्री से पूछा आज यहा इतनी भीड़ क्यों लगी हुई है? मन्त्री ने कहा—आज यहाँ विप्रबंध मुनि पधार हुए हैं। वे स्वयं गरुड आदि को मानने वाले हैं। उहाँ के दर्शनाय आज यहा भीड़ लगी हुई है। राजा ने कहा—तब तो हम भी क्यों और मुनि से पूछे कि स्वर्ग-गरुड कहाँ है? जरा बतायें ता नदी। मन्त्री तो चाहता ही पड़ी था। वह राजा को मुनि के पास ले गया। राजा ने मुनि से पूछा—महाराज! क्या स्वयं और गरुड है? अगर है तो मेरे दादा मुझ से भी अधिक पापी थे। आपकी माय यत्नातुमार वे अग्रथ गरुड में गये होंग, और महान् दुर्गों का सामना कर रहे होंगे। ये क्यों उहाँ आकर मुझे अपना हाल सुनात? जिससे मैं फिर दिसा न करूँ।

मुनि ने कहा—राजन्! अगर तुम्हारी राती के साथ कोई दुर्घटवहार करे तो तुम क्या करोगे?

राजा—मैं उसे तत्क्षण जान से मार दूंगा।

मुनि—अगर वह कुछ समय का अथकाश चाहे तो क्या उसे जान दोगे।

राजा—नहीं, कदापि नहीं। मैं उसे तत्क्षण मार डालूंगा।

मुनि—अब तुम अपने अपराधी को एक मिनट भी छोड़ना नहीं चाहोगे तो तुम्हारे दादा को, जिन्होंने आपको पाप किये हैं, गरुड से उद्धे कौन यहा आने देगा?

राजा ने फिर दूसरा प्रश्न पूछा—महाराज! मेरी दादी

बही धर्मात्मा थी । वह अवश्य स्वर्ग में गए होंगे । यह क्यों नहीं आकर मुझे पाप कर्म से राहत दी ?

मुनि ने कहा—राजन् ! जोर मनुष्य नदी घोबर सभ्या बदन आदि शुभ कृत्यों के लिये जा रहा हो और उस समय यदि एक भगी पाखाने में उसे बातचीत करने को बुलाए ता क्या वह वहाँ जाना पसन्द करेगा ?

राजा—नहीं ।

मुनि—यस, यही हाल अपनी दासी का भी समझो ।

राजा ने फिर मुनि से तीसरा प्रश्न किया—महाराज ! क्या आप आत्मा को दिखा सकते हैं ?

मुनि ने कहा—राजन् ! ये सामने पड़ क पछे किमछे हिल रहे हैं ?

राजा—दया से ।

मुनि—क्या तुम दया को देख सकते हो ?

राजा—नहीं ।

मुनि—अब तुम ऐसी स्थूल चीज को भी अपनी आँखों से नहीं देख सकते, तब आत्मा जैसी अरूपी चीज को कैसे देख सकते हो ?

राजा—शुद्धा महाराज ! ये दाघी का आत्मा घीटी के शरीर में कैसे चला जाता है ?

मुनि—राजन् ! जिस तरह एक कमरे में एक दीपक के जलन से सारा कमरा प्रकाशमान हो जाता है और उसी दीपक पर यदि एक बर्तन ढाढ़ दिया जाय तो उसका वह प्रकाश बतन में ही समा जाता है । उसी प्रकार दाघी की आत्मा के सन्ध में भी जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार अनक प्रश्नोत्तर पर राजाने अन्त में अपनी द्वार खूल कर आत्मा के वाक्य जैनधर्म को स्वीकार किया ।

